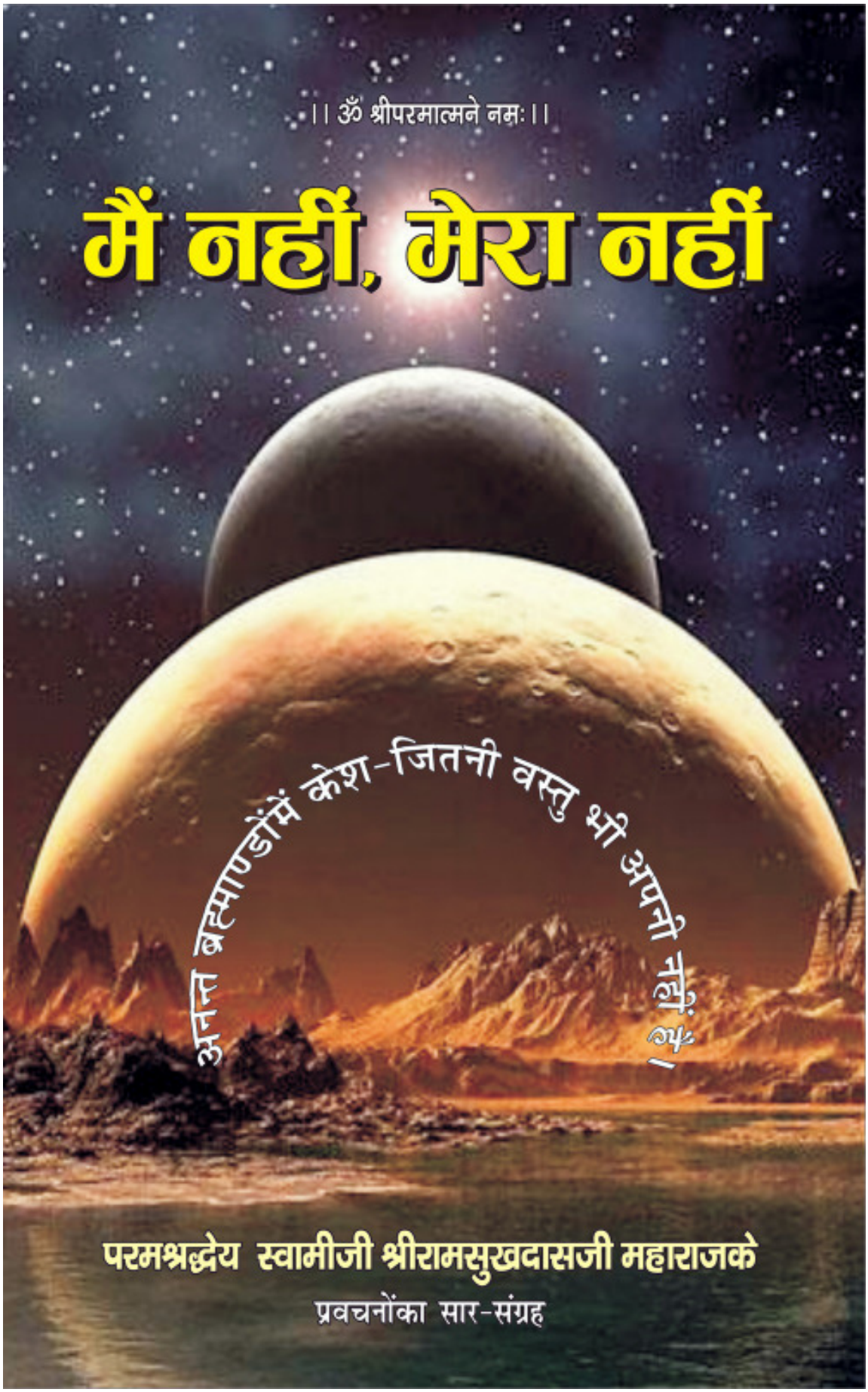

।। ॐ श्रीपरमात्मने नमः ।।

मैं नहीं, मेरा नहीं

अनन्त ब्रह्माण्डोंमें केश-जितनी वस्तु भी अपनी नहीं है।

परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजके

प्रवचनोंका सार-संग्रह

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

मैं नहीं, मेरा नहीं

[परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजके
प्रवचनोंका सार-संग्रह]

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

'हे प्रभो! आप ही मेरी माता हो, आप ही पिता हो, आप ही बन्धु हो, आप ही सखा हो, आप ही विद्या हो, आप ही धन हो। हे देवदेव! मेरे सब कुछ आप ही हो।'

संकलन तथा सम्पादन—
राजेन्द्र कुमार धवन

गीता प्रकाशन, गोरखपुर

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

नम्र निवेदन

इस युगके अप्रतिम महापुरुष परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज दिन-रात ऐसी युक्तियोंकी खोजमें लगे रहते थे, जिनसे मानवमात्र शीघ्र-से-शीघ्र तथा सुगमतापूर्वक अपना कल्याण कर सके। इस विषयमें उन्होंने अनेक क्रान्तिकारी युक्तियोंकी खोज भी की और उन्हें अपने प्रवचनों तथा पुस्तकोंके माध्यमसे जनतातक पहुँचाया। इसके पीछे उनका जो विलक्षण भाव था, वह उनके प्रवचनोंमें इस प्रकार प्रकट हुआ है—

'आप ऊँचे बन जायँ, महात्मा बन जायँ, संसारमें आपकी कीर्ति हो जाय, आपके दर्शनसे लोगोंका कल्याण हो जाय—ऐसा मैं चाहता हूँ, इसीलिये ये बातें कहता हूँ।' (१.२.९९, प्रातः ९, गाँधीधाम)।

'मैं आपको 'सुदुर्लभ महात्मा' बनाना चाहता हूँ।' (१२.६.२००१, प्रातः ८.३०, ऋषिकेश)।

'मेरे मनमें आता है कि सब-के-सब जीवन्मुक्त हो जायँ, तत्त्वज्ञानी हो जायँ! आप जीवन्मुक्त हो जाओ, जन्म-मरणसे रहित हो जाओ, वह बात मैं कहता हूँ!' (२६.७.२००१, प्रातः ८.३०, ऋषिकेश)।

ऐसा ऊँचा भाव होनेके कारण ही परमश्रद्धेय श्रीस्वामीजी महाराजकी पुस्तकोंमें एक विलक्षण शक्ति है, जो पढ़नेवालेके हृदयमें प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्षरूपसे असर करती है।

प्रस्तुत पुस्तक 'मैं नहीं, मेरा नहीं' में परमश्रद्धेय श्रीस्वामीजी महाराज द्वारा अप्रैल २००१ से लेकर अगस्त २००१ तक दिये गये प्रवचनोंका सार-संग्रह दिया जा रहा है। ये सभी प्रवचन ऋषिकेशमें दिये गये थे। कारण कि परमश्रद्धेय श्रीस्वामीजी महाराज वैशाख कृष्ण १०, २०५८, दिनांक १८.४.२००१ को गीताभवन, स्वर्गाश्रम, ऋषिकेशमें स्थायी सत्संग हेतु पधार गये थे। इन प्रवचनोंमें मानवमात्रके कल्याणकी अत्यन्त सरल युक्तियोंका समावेश हुआ है। प्रत्येक साधकको इनसे विशेष लाभ उठाना चाहिये।

सन्त शरीरसे प्रकट नहीं होते, अपितु वाणीसे प्रकट होते हैं। परमश्रद्धेय श्रीस्वामीजी महाराज वर्तमानमें शरीररूपसे हमारे दृष्टिगोचर नहीं हैं, पर वाणीरूपसे वे हमारे बीच ज्यों-के-त्यों विद्यमान हैं और सदा विद्यमान रहेंगे। मनुष्यमात्रका कल्याण करनेवाली उनकी वाणी युगोंतक साधकोंका मार्गदर्शन करती रहेगी।

परमश्रद्धेय श्रीस्वामीजी महाराजके सिद्धान्तसे, उनके विचारोंसे पूर्णतः परिचित होनेके लिये पाठकको उनके सम्पूर्ण साहित्यका अध्ययन-मनन करना चाहिये।

किसी भी देश, जाति, धर्म, सम्प्रदाय आदिका कोई भी जिज्ञासु यदि प्रस्तुत पुस्तकका मनोयोगपूर्वक अध्ययन करेगा तो उसके साधनमें अवश्य प्रगति होगी, इसमें सन्देह नहीं। प्रत्येक साधकसे मेरी विनम्र प्रार्थना है कि कम-से-कम एक बार तो इस पुस्तकको अवश्य ही पढ़े।

गुरुपूर्णिमा
वि० सं० २०७२

निवेदक—
राजेन्द्र कुमार धवन

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

मैं नहीं, मेरा नहीं

मंगलाचरण

पराकृतनमद्बन्धं परं ब्रह्म नराकृति।
सौन्दर्यसारसर्वस्वं वन्दे नन्दात्मजं महः॥

'जिन्होंने नमस्कार करनेवालोंके भव-बन्धनको दूर कर दिया है और जो मनुष्यके आकारमें साक्षात् परब्रह्म हैं, उन सौन्दर्यके सारसर्वस्व नन्दनन्दनरूप दिव्य तेजकी मैं वन्दना करता हूँ।'

प्रपन्नपारिजाताय तोत्त्रवेत्रैकपाणये।
ज्ञानमुद्राय कृष्णाय गीतामृतदुहे नमः॥

'जो शरणागत भक्तोंको कल्पवृक्षके समान मनोवांछित फल देनेवाले हैं, जिनके एक हाथमें घोड़ोंकी लगाम और चाबुक है तथा दूसरा हाथ ज्ञानमुद्रासे सुशोभित है, ऐसे गीतारूपी अमृतको दुहनेवाले भगवान् श्रीकृष्णको मैं प्रणाम करता हूँ।'

वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम्।
देवकी परमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्॥

'जो वसुदेवजीके पुत्र, दिव्यरूपधारी, कंस एवं चाणूरका नाश करनेवाले और देवकीजीके लिये परम आनन्दस्वरूप हैं, उन जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णकी मैं वन्दना करता हूँ।'

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्
पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात्।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्
कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने॥

'वंशीसे सुशोभित हाथोंवाले, नवीन मेघके समान कान्तिवाले, पीताम्बरधारी, बिम्बफलके समान लाल होंठोंवाले, पूर्णचन्द्रके समान सुन्दर मुखवाले तथा कमलके समान नेत्रोंवाले श्रीकृष्णसे बढ़कर मैं कोई और तत्त्व नहीं जानता।'

हरिः ॐ नमोऽस्तु परमात्मने नमः।
श्रीगोविन्दाय नमो नमः।
श्रीगुरुचरणकमलेभ्यो नमः।
महात्मभ्यो नमः।
सर्वेभ्यो नमो नमः।

* * * * * * * * *

'सच्चिदानन्दघन परमात्माको और सन्त-महापुरुषोंको सादर अभिवादन कर आपलोगोंके समक्ष कुछ बातें कहनेके लिये एक चेष्टा कर रहा हूँ। हमारी बातोंमें अच्छी बातें मालूम दें, वे शास्त्रोंके सिद्धान्तकी, वेदोंकी, पुराणोंकी, स्मृतियोंकी, रामायण आदि ग्रन्थोंकी हैं; और त्रुटियाँ मालूम दें, वे मेरी व्यक्तिगत हैं। व्यक्तिगत बातोंकी तरफ ध्यान न देते हुए वास्तविक सिद्धान्तकी तरफ ध्यान देंगे, ऐसी प्रार्थना है।'

*** *** ***

श्रोता—हमें क्रोध क्यों आता है और वह कैसे मिटे?

स्वामीजी—जब अपने स्वार्थमें अथवा अपने अभिमानमें बाधा लगे, तब क्रोध आता है। गीतामें आया है—'**कामात्क्रोधोऽभिजायते**' (गीता २। ६२) 'कामनासे (बाधा लगनेपर) क्रोध पैदा होता है'। अतः क्रोध मिटाना हो तो कामना और अभिमानका त्याग कर दो।

श्रोता—सारी सृष्टिमें जितनी शक्ति है, उससे अधिक शक्ति हममें है, इसका क्या मतलब है?

स्वामीजी—इसका मतलब है कि आप चेतन हो, सृष्टि जड़ है। सृष्टि निरन्तर बदलती है, आप निरन्तर एकरूप रहते हो। अग्निकी चिनगारी हो और रुई का ढेर हो तो दोनोंमें कौन बलवान् होता है? आप परमात्माके साक्षात् अंश हो। परमात्माकी सब शक्ति आपके साथमें है। परन्तु आप मामूली अहंकारके वशमें हो जाते हो, जड़ पदार्थोंको अपना मान लेते हो, तब दुर्दशा होती है!

श्रोता—भगवान्‌ने हमें तीनों गुणोंसे, अपनी मायासे बाँधा है। भगवान् छुड़ायेंगे, तभी छूटेंगे। साधन करनेसे कुछ नहीं होता!

स्वामीजी—अगर साधन करनेसे कुछ नहीं होता तो फिर खाओ-पीओ मत! खाना-पीना भी जीनेका साधन है!

आप चीजोंको अपनी समझोगे तो बन्धन रहेगा ही, छूटेगा नहीं। आप छोड़ दो तो छूट जायगा। साधु होते हैं तो आपलोगोंके घरोंसे जन्मे हुए ही होते हैं। साधु होनेके बाद घरवालोंका बारह वर्ष भी पत्र न आये तो प्रतीक्षा नहीं होती। कभी मनमें नहीं आती कि हमारे सम्बन्धी जीवित हैं कि मर गये! आपके घरोंकी कन्या विवाहके बाद दूसरे घरकी हो जाती है और उसी घरको अपना मान लेती है। जब वह दादी-परदादी बन जाती है तो उसको अपने घरकी याद ही नहीं आती।

*** *** ***

श्रोता—'मेरा कुछ नहीं है तथा मुझे कुछ नहीं चाहिये' और 'सब कुछ वासुदेव ही है'—इन दोनोंमें मेरे लिये कौन-सा साधन श्रेष्ठ है?

स्वामीजी—दोनों ही ठीक हैं। 'मेरा कुछ नहीं है तथा मुझे कुछ नहीं चाहिये'—यह पहला साधन है और 'सब कुछ वासुदेव ही है'—यह अन्तिम साधन है। मूल बात है—मेरा कुछ नहीं है। आप 'मेरा कुछ नहीं है'—इस बातका अनुभव कर लोगे तो 'मेरेको कुछ नहीं चाहिये'—यह अपने-आप हो जायगा। फिर 'सब कुछ वासुदेव ही है'—इसका अनुभव अपने-आप हो जायगा।

'मेरा कुछ नहीं है'—यह बड़ी सार बात है!

श्रोता—जिनसे हमारा जन्म हुआ है, वे माँ-बाप भी मेरे कुछ नहीं हैं क्या?

स्वामीजी—बिल्कुल नहीं हैं। अगर वे आपके हैं तो उनको रख लो, मरने मत दो! उनको अपना मत मानो, पर उनकी सेवा करो। **अपना मानकर जो सेवा की जाती है, वह सेवा होती ही नहीं.....होती ही नहीं.....होती ही नहीं! अपना नहीं माननेसे ही सेवा होती है। अपना माननेसे सेवा नष्ट हो जाती है!**

श्रोता—भगवान्‌में हमारा प्रेम, गोपीभाव कैसे हो?

स्वामीजी—केवल आपकी लगन होनी चाहिये। हरदम, आठों पहर आपकी लगन हो तो हो ही जायगा!

*** *** ***

श्रोता—भगवान्‌की प्राप्तिके लिये कौन-सी साधना करनी चाहिये?

स्वामीजी—तरह-तरहकी साधनाओंसे भगवान् नहीं आते हैं। भगवान् आते हैं भीतरकी असली चाहनासे। भगवान्‌की प्राप्तिके लिये केवल उत्कण्ठा चाहिये। जैसे भगवान् एक ही हैं, ऐसे ही उनकी प्राप्तिकी इच्छा भी एक ही हो।

श्रोता—आप कहते हैं कि मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिये, पर शरीरको तो रोटी-कपड़ा चाहिये ही?

स्वामीजी—मैंने 'मेरेको नहीं चाहिये'—यह कहा है, 'शरीरको नहीं चाहिये'—यह नहीं कहा है। शरीर और रोटी-कपड़ा एक ही है। जिस जातिका रोटी-कपड़ा है, उसी जातिका शरीर है। परन्तु मैं भगवान्‌का अंश हूँ, इसलिये मेरे भगवान् हैं और मेरेको केवल भगवान् चाहिये। मेरे लिये भगवान्‌के सिवाय अन्य कोई आवश्यकता है नहीं, हुई नहीं, होगी नहीं, हो सकती नहीं। आप अपने-आपको केवल भगवान्‌का ही समझें; क्योंकि जीवमात्र ईश्वरका अंश है। **ईश्वरके सिवाय जीवको किसी चीजकी जरूरत नहीं है।** आप कहेंगे कि हमने सन्तोंको देखा है, अच्छे-अच्छे महात्मा भी रोटी माँगते हैं। परन्तु **अगर वे शरीरको अपना मानते हैं तो वे महात्मा नहीं हैं।** शरीर अपना नहीं है, संसारका है।

श्रोता—जब संसारमें जीवका कुछ भी नहीं है तो भगवान्‌ने जीवको पैदा ही क्यों किया?

स्वामीजी—भगवान्‌ने भूल की तो उनको माफ कर दो!! आप बतायें कि जो घरका मालिक होता है, वह बालकोंके लिये सच्चा (असली) घोड़ा लाता है कि मिट्टी (प्लास्टिक)-का घोड़ा लाता है? बालक मिट्टीके घोड़ेमें राजी होते हैं, इसलिये वह पैसे खर्च करके भी मिट्टीका घोड़ा लाता है। इसी तरह आप संसारकी चीजोंसे राजी होते हो, इसलिये भगवान् संसार देते हैं। आप इनमें राजी होना छोड़ दो तो भगवान् कभी मना करेंगे ही नहीं। मना करें तो मेरा कान पकड़ना!

हम सबका सम्बन्ध भगवान्‌के साथ है, संसारके साथ है ही नहीं।

*** *** ***

आप सबको सुनानेके लिये एक बात मेरे मनमें आयी है। विचार करें, अपना किसी वस्तुपर वश चलता है क्या? शरीरपर, मनपर, बुद्धिपर, अहंकारपर, प्राणोंपर, वस्तुओंपर, रुपयोंपर, कुटुम्बपर, सगे-सम्बन्धियोंपर, घरपर, जमीनपर, जायदादपर, किसीपर भी अपना वश चलता है क्या? सब भाई-बहन इस बातपर विचार करें। वस्तु, व्यक्ति और क्रिया—इन तीनोंपर किसीका वश चलता है क्या? इनको हम जैसा चाहें, वैसा रख सकते हैं क्या? वस्तुको, व्यक्तिको, क्रियाको, मानको, आदरको, सत्कारको, प्रशंसाको, वाह-वाहको जैसा चाहें, वैसा रख सकते हैं क्या? इनपर हमारा वश चलता है क्या? इनपर हमारी स्वतन्त्रता चलती है क्या? इसपर विचार करो। **आपको साधन करना हो तो यह साधन करनेकी खास बात है।**

सब भाई-बहन विचार करो कि हमारा वश किसपर चलता है? हमारी स्वतन्त्रता किसपर चलती है? हम अपने मनके अनुसार किन वस्तुओंको, व्यक्तियोंको रख सकते हैं? बोलने, चलने, देखने, सुनने आदि किन क्रियाओंको अपने मनके अनुसार कर सकते हैं? आपको साधन करना हो तो कम-से-कम इस एक बातपर विचार करो कि हमारा वश किसपर चलता है? स्वयं इस बातपर विचार करो तो आप उन्नत हो जाओगे। अभी जिस स्थितिमें हो, उससे ऊँचे उठ जाओगे। आपको बहुत लाभ होगा।

जिसपर हमारा वश नहीं चलता, वह हमारा कैसे? शरीरको बीमार न होने दें, कमजोर न होने

दें, मरने न दें—ऐसा हमारा वश चलता है क्या? जिसपर हमारा वश नहीं चलता, उसको अपना मानना ठीक है क्या? छोटे-बड़े सबसे हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि इस बातपर विचार करो। अगर आप अपनी आध्यात्मिक उन्नति चाहते हो, सत्संगसे लाभ लेना चाहते हो, परमात्माकी प्राप्ति चाहते हो, तत्त्वज्ञान चाहते हो, भगवान्‌का प्रेम चाहते हो तो इसपर सोचो। जिनपर अपना वश नहीं चलता, उनको अपना मान सकते हो क्या? उनको अपना कैसे मानोगे? उनके मालिक कैसे बनोगे? इसपर गहरा विचार करो तो आपकी आध्यात्मिक उन्नति जरूर होगी, इसमें सन्देह नहीं है। बहुत लाभ होगा! आप वर्षोंतक सत्संग करते रहे और लाभ नहीं हुआ, वह लाभ एक दिनमें हो जायगा!

वस्तु, व्यक्ति और क्रिया—ये तीन हैं। इन तीनोंपर आपका वश चलता है क्या? क्रियाएँ अनेक हैं। शरीरकी क्रिया है, इन्द्रियोंकी क्रिया है, मनकी क्रिया है, प्राणोंकी क्रिया है। चलना-फिरना, उठना-बैठना, सोना-जगना, जाना-आना, लेना-देना आदि किस क्रियापर आपका वश चलता है? केवल बातें न सुनकर इसपर गहरा विचार करो।

*** *** ***

आप साक्षात् परमात्माके अंश हैं। आप साकार हैं ही नहीं! कोई भी साधक साकार नहीं होता। शरीर साकार होता है। कोई साधक शरीर है ही नहीं। **साधक शरीर नहीं होता और शरीर साधक नहीं होता।** शरीर तो मर जायगा। साधक निराकार होता है।

श्रोता—जब भगवान्‌के दर्शनसे कल्याण होता है, तो जिस समय भगवान् राम और कृष्णका अवतार हुआ, उस समय उनका दर्शन करनेवाले सब मनुष्योंकी मुक्ति हो गयी क्या?

स्वामीजी—जिसने भगवान् समझकर दर्शन किया, उसका कल्याण हुआ। दुर्योधन भगवान् कृष्णको एक चालाक आदमी समझता था, फिर कैसे मुक्ति होगी? दुर्योधनको भगवान्‌के दर्शन नहीं हुए, प्रत्युत चालाक आदमीके दर्शन हुए। सब जग ईश्वररूप है, तो क्या इसको देखनेसे सबकी मुक्ति हो गयी? जैसे इसको देखनेसे मुक्ति नहीं हुई, ऐसे भगवान् राम और कृष्णको देखनेसे भी सबकी मुक्ति नहीं हुई।

*** *** ***

श्रोता—हमारा कोई अपमान करता है तो उसके प्रति द्वेष पैदा हो जाता है और हमारे मनपर बहुत बुरा असर पड़ता है। इससे बचनेका क्या उपाय है?

स्वामीजी—जो निन्दा, अपमान करता है, वह आपके पापोंका नाश करता है। अपने शरीर-मन-इन्द्रियोंके प्रतिकूल जो परिस्थिति आती है, उससे पापोंका नाश होता है। यह एकदम पक्की बात है। आप सुख भोगते हो, उससे पुण्योंका नाश होता है। आप खुद विचार करो कि दुःख पुण्यका फल है क्या? जो हमारे पापोंका नाश करता है, वह तो अपना नुकसान सहकर भी हमारा उपकार करता है! अतः हमारी निन्दा करनेवाला वास्तवमें हमारा भला करनेवाला है, इस बातको आप दृढ़तासे समझ लो तो दुःख नहीं होगा, उल्टे आनन्द आयेगा!

मन्निन्दया यदि जनः परितोषमेति
नन्वप्रयत्नसुलभोऽयमनुग्रहो मे।
श्रेयोऽर्थिनो हि पुरुषाः परतुष्टिहेतो-
र्दुःखार्जितान्यपि धनानि परित्यजन्ति॥

(जीवन्मुक्तिविवेक २)

'मेरी निन्दासे यदि किसीको सन्तोष होता है, तो बिना प्रयत्नके ही मेरी उनपर कृपा हो गयी; क्योंकि कल्याण चाहनेवाले पुरुष तो दूसरोंके सन्तोषके लिये अपने कष्टपूर्वक कमाये हुए धनका भी परित्याग कर देते हैं (मुझे तो कुछ करना ही नहीं पड़ा)!'

निंदक नेड़ा राखियै, आंगणि कुटी बंधाइ।
बिन साबण पांणी बिना, निरमल करै सुभाइ॥

'अपने निन्दकको अपने पास ही आँगनमें छप्पर डालकर रखना चाहिये; क्योंकि वह बिना साबुन और पानीके ही हमें सहजरूपसे निर्मल कर देता है।'

इसलिये अपमान करनेवालेका उपकार मानना चाहिये और छिपकर अर्थात् उसको मालूम न पड़े, इस तरहसे उसका उपकार करना चाहिये, उसकी सहायता करनी चाहिये।

हमें जो दुःख होता है, वह हमारी बेसमझीसे होता है। बेसमझीसे होनेवाला दुःख समझनेसे मिट जाता है। सत्संगसे बातें जाननेमें आती हैं, और जाननेमें आनेसे दुःख मिट जाता है; क्योंकि अनजानपनेमें दुःख होता है, जाननेसे मिट जाता है।

आपके पापोंका नाश हो जाय तो इसमें हानि क्या है? इसमें लाभ-ही-लाभ है। इसमें आप निर्भय रहो। प्रशंसा हो, वाह-वाह हो, उसमें हानि है, खतरा है! जितने सन्त हुए हैं, वे प्रायः दुःखदायी परिस्थिति आनेसे सन्त हुए हैं।

हमारे मनके प्रतिकूल कोई निन्दा-अपमान करे तो हमारा फायदा होता है या नुकसान, आप बताओ?

श्रोता—फायदा तो होता है, पर समझमें नहीं आता!

स्वामीजी—समझमें नहीं आता तभी तो मेरेको कहना पड़ता है! अगर आपके समझमें बात आ जाती तो मेरेको कहना क्यों पड़ता?

बहुत वर्ष पहलेकी बात है। हमारे गुरु महाराजका शरीर शान्त हो गया। उसको जलानेको गये तो जलाते समय मेरे आँसू आ गये! मेरे मनमें यह बात आयी कि लोग पूछेंगे कि क्या तुम्हारे गुरुजी हैं तो हम क्या कहेंगे! इतनी बात मनमें आते ही आँसू आ गये। तब हमारे गुरुभाई रामधनजी बोले—'**अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च.....**' (गीता २। ११)। यह सुनते ही आँसू सूख गये! तात्पर्य है कि जब बात समझमें आ जाय तो शोक मिट जाता है। आप सत्संग क्यों करते हो? ऐसी बातें जाननेके लिये ही तो सत्संग करते हो।

शरीर, इन्द्रियाँ, मनके विरुद्ध जो घटना घटती है, उसमें पापोंका ही नाश होता है—यह नियम है। अगर मेरी बात नहीं मानोगे तो क्या करोगे, बताओ! होगा तो वैसे ही, फिर मुफ्तमें दुःख क्यों पाओ! मैंने आपको दुःख दूर करनेकी बात बतायी है। परिस्थिति तो वही रहेगी, पर मेरी बात मानो तो आनन्द हो जायगा! क्या परिस्थितिको आप मिटा सकते हो? नहीं मिटा सकते तो फिर दुःख क्यों पाओ?

श्रोता—अपमान सहना कोई सामान्य बात थोड़े ही है! यदि द्रौपदी अपमान सह लेती तो महाभारतका युद्ध क्यों होता? अपमानके पीछे ही महाभारत युद्ध हुआ!

स्वामीजी—तो आप भी युद्ध करो!! युद्ध करनेसे क्या फायदा होगा? महाभारतके युद्धसे क्या फायदा हुआ? उसका नतीजा बुरा ही हुआ। क्या आप भी युद्ध करोगे? नहीं करोगे तो मेरी बात मान लो। सब बातोंसे मेरी बात तेज है!

द्रौपदी अपमान नहीं सह सकी, इसलिये युद्ध हुआ—यह बात नहीं है। आप महाभारत पढ़ो। द्रौपदी और धृष्टद्युम्न—दोनों कौरवोंका नाश करनेके लिये ही यज्ञकुण्डसे पैदा हुए थे। यज्ञकुण्डसे प्रकट होते समय द्रौपदी सात वर्षकी थी।

श्रोता—आपकी बात समझमें भी आती है, प्रिय भी लगती है, लेकिन अपमान न सहनेका जो स्वभाव है, उसे हम बदल नहीं पा रहे हैं! क्या करें?

स्वामीजी—आप एक बार, दो-तीन बार सहो, बदल जायगा। ऐसी कई बातें थीं, जो पहले कठिन थीं, पर आज सुगम हो गयीं। आप विचार करो तो आपको बहुत फायदा होगा। नहीं सहनेसे नुकसान हो रहा है, सह लो तो क्या नुकसान होगा? मैंने ऐसी बातें सही हैं। सहनेमें कठिनता पड़ती है, पर फायदा होता है। जितने सन्त हुए हैं, सब सहकर हुए हैं।

श्रोता—अपमान करनेवाला बुरा लगता है!

स्वामीजी—बुरा इसलिये लगता है कि आप मान चाहते हो। मानकी चाहना छोड़ दो तो बुरा नहीं लगेगा।

*** *** ***

श्रोता—जब भगवान् हमारे हैं ही, तो फिर प्रार्थना करनेकी क्या जरूरत है?

स्वामीजी—कोई जरूरत नहीं। अगर आपका भगवान्‌में प्रेम है तो प्रार्थना करनेकी कोई जरूरत नहीं। आपका संसारमें प्रेम है तो भगवान्‌से प्रार्थना करो। आपका प्रेम किसमें है?

गायमें घी तो है ही, पर वह गायके काम नहीं आयेगा। भगवान् तो हैं ही, पर भगवान्‌के होते हुए भी दुनिया दुःख पा रही है! जो दुःख पा रहे हैं, उनके लिये क्या भगवान् मर गये? गंगाजीके किनारे कोई प्यासा मर जाय, पर जल न पीये तो क्या गंगाजीको दोष लगेगा? गंगाजी पासमें बहती हुई भी काम नहीं आयेंगी।

*** *** ***

जिसके मनमें ऐसा आता है कि हमारे खाने-पीनेका, रहनेका ठीक प्रबन्ध हो जाय तो हम बहुत अच्छी तरहसे भजन करें, वह कभी भजन नहीं कर सकता। उसकी आसक्ति मिटेगी नहीं। यह बिल्कुल सच्ची बात है। कुछ न होनेसे जो आनन्द है, वह आनन्द पदार्थोंके होनेसे नहीं है। वस्तुएँ मिलेंगी तो भोगी होओगे! सांसारिक पदार्थोंसे उत्पन्न होनेवाला सुख शान्ति देनेवाला नहीं है। इस बातका सन्त-महात्माओंने ठीक अनुभव किया है और कह दिया है—

चाख चाख सब छाँड़िया माया-रस खारा हो।
नाम-सुधा-रस पीजिए छिन बारंबारा हो॥
लगे मोहि राम पियारा हो।

तुम मेहनत मत करना, हमने चख-चखकर ठीक देख लिया है। पर यह बात कहनेसे समझमें नहीं आती। अगर समझमें आ जाय तो सांसारिक सुखकी इच्छा पड़ाकसे छूट जायगी। सपनेमें भी इच्छा नहीं होगी कि रुपये होने चाहिये। निर्वाहकी वस्तुएँ अपने-आप मिलेंगी।

प्रारब्ध पहले रचा, पीछे रचा सरीर।
तुलसी चिंता क्यों करे, भज ले श्रीरघुबीर॥

पदार्थोंका भरोसा रखेंगे तो असली भजन नहीं होगा। अगर भगवान्‌के भरोसे निश्चिन्त हो जायँ

तो निर्वाहमें कोई कमी नहीं रहेगी। ऐसा मैंने देखा है। मनुष्य भी काम करनेवालेको मजदूरी देता है तो क्या भजन करनेवालेको भगवान् रोटी-कपड़ा नहीं देंगे? विश्वका भरण-पोषण करनेवाले क्या भक्तोंकी उपेक्षा करेंगे? इसका यह अर्थ नहीं है कि सब कुछ त्याग दो। खास बात यह है कि आप जैसी अवस्थामें हैं, उसीमें तत्परतासे भगवान्‌में लग जाओ।

*** *** ***

श्रोता—भगवान्‌के कौन-से स्वरूपका विशेषतासे ध्यान करना चाहिये?

स्वामीजी—जो आपको प्रिय लगता हो, अपनी दृष्टिसे सर्वश्रेष्ठ मालूम देता हो, उस स्वरूपका ध्यान करना चाहिये। उसके ध्यानसे विशेष लाभ होगा। भगवान् तो एक ही हैं। आपका मन लगना चाहिये।

श्रोता—जब भगवान्‌का ध्यान करते हैं, तब नींद आने लगती है! क्या करना चाहिये?

स्वामीजी—नींद आती है रुचि कम होनेसे। रुचि ज्यादा होती है तो नींद नहीं आती। सिनेमा देखते हैं तो क्या नींद आती है? रुपये गिनते हैं तो क्या नींद आती है? नींद आये तो खड़े होकर, चलते-फिरते भगवान्‌का ध्यान करो, नामजप करो, कीर्तन करो।

श्रोता—भगवान् मेरे हैं तो वे सगुण-साकारकी दृष्टिसे ही मेरे हैं या निर्गुण-निराकारकी दृष्टिसे भी मेरे हैं?

स्वामीजी—भगवान् सगुण हों, निर्गुण हों, साकार हों, निराकार हों, दोभुजी हों, चारभुजी हों, हजारभुजी हों, कैसे ही हों, वे मेरे हैं। उनको 'मेरा' कहनेमात्रसे वे खुश हो जाते हैं! बालक माँको 'मैं तेरा हूँ, तू मेरी है' कहे तो माँ राजी हो जाती है। ऐसे ही भगवान्‌से कहे कि 'हे नाथ! मैं आपका हूँ, आप मेरे हो' तो वे खुश हो जाते हैं।

श्रोता—क्या हमारा खराब प्रारब्ध किसी उपायसे बदला जा सकता है?

स्वामीजी—क्यों बदलें? प्रारब्ध खराब है तो भोग करके नष्ट कर दो। लोभी आदमी टैक्सीके लिये पैसा खर्च न करके पैदल चला जाता है। हम प्रारब्धको मिटानेके लिये भगवान्‌का भजन क्यों खर्च करें? शूरवीरतासे उसको भोग लें। भीष्मजी महाराजके शरीरमें दो अंगुल भी जगह ऐसी नहीं बची थी, जहाँ बाण लगनेसे घाव न हुआ हो। परन्तु उस अवस्थामें भी वे कहते हैं कि मेरे जितने कर्म हैं, सब फल भुगतानेके लिये आ जाओ!

उपतिष्ठन्तु मां सर्वे व्याधयः पूर्वसञ्चिताः।
अनृणो गन्तुमिच्छामि तद् विष्णोः परमं पदम्॥

(महाभारत, शान्ति० २०९)

'पूर्वजन्ममें जिन कर्मोंका मेरे द्वारा संचय किया गया है, वे सभी रोग मेरे शरीरमें उपस्थित हो जायँ। मैं सबसे उऋण होकर भगवान् विष्णुके परमधामको जाना चाहता हूँ।'

*** *** ***

गीतामें आया है कि जिसकी दृष्टिमें सब कुछ परमात्मा ही हैं, ऐसा महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है—**'वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः'** (गीता ७। १९)। भगवान्‌ने पहले 'पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश (—ये पंचमहाभूत) और मन, बुद्धि तथा अहंकार'—इस प्रकार आठ प्रकारके भेदोंवाली 'अपरा प्रकृति' का और जीवरूप 'परा प्रकृति' का वर्णन किया। इन दोनों प्रकृतियोंको भगवान्‌ने अपना बताया। प्रकृति और प्रकृतिवाला दो होते हुए भी एक हैं और एक होते हुए भी दो हैं। जैसे, आप और आपका

स्वभाव दो होते हुए भी एक हैं और एक होते हुए भी दो हैं। आप अपने स्वभावको अपनेसे अलग करके दिखा नहीं सकते। स्वभाव बदलता है, पर आप नहीं बदलते। चौरासी लाख योनियोंमें जानेपर भी आप वे-के-वे ही रहते हैं।

योगदर्शनमें लिखा है कि किसी एक ध्येयमें धारणा, ध्यान और समाधि—इन तीनोंका होना 'संयम' कहलाता है—'**त्रयमेकत्र संयमः**' (विभूति० ४)। मनुष्य जिसके बलमें संयम करेगा, उसको वैसा ही बल मिल जायगा—'**बलेषु हस्तिबलादीनि**' (विभूति० २४)। जैसे हमने कभी हाथीका शरीर धारण किया था, उसको योगशक्तिसे जान लें और उसमें धारणा करें तो अपनेमें हाथीका बल आ जायगा। इस तरह जिस-जिस शरीरके बलकी धारणा करेंगे, उस-उसका बल इस शरीरमें आ जायगा। देवताओं, असुरों, राक्षसोंका बल भी आ जायगा। चौरासी लाख योनियोंकी जो शक्तियाँ हैं, वे सब शक्तियाँ धारणा करनेसे हमारेमें आ सकती हैं। अभी भाई-बहनोंने धारणा ही तो कर रखी है कि मैं स्त्री हूँ, मैं पुरुष हूँ, मैं पढ़ा-लिखा हूँ, मैं अपढ़ हूँ, आदि। धारणाके अनुसार अपनेमें बल दीखता है। चौरासी लाख योनियोंमें हमने धारणा की है। हमें याद नहीं है, पर शास्त्र कहते हैं। हमने देवताओंका शरीर भी धारण किया तो उसको याद करके देवताओंकी शक्तिमें संयम किया जाय तो संयम करते ही वह शक्ति अपनेमें आ जायगी। इस तरह देवता, राक्षस, पशु, पक्षी आदि किसीके भी बलमें संयम करनेसे वह शक्ति आ जायगी। कण्ठके मूलमें संयम करनेसे भूख-प्यास मिट जाती है। वास्तवमें सब शक्तियाँ अपनेमें अर्थात् चेतनमें ही हैं।

पृथ्वी, जल, अग्नि आदि सब भगवान्‌की प्रकृति है। चौदह भुवनोंमें, करोड़ों ब्रह्माण्डोंमें अनन्तकोटि जीव हैं, वे सब भी भगवान्‌की प्रकृति हैं। जड़ प्रकृति भी भगवान्‌का स्वरूप हुई और चेतन प्रकृति भी भगवान्‌का स्वरूप हुई। जड़, चेतन और भगवान्—तीनों मिलकर '**वासुदेवः सर्वम्**' हुआ। भगवान् वासुदेव ही पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहम् बने। इन आठोंके सिवाय और संसारमें क्या है? अब प्रश्न उठता है कि इसका अनुभव कैसे हो? **अपने-आपको भगवान्‌के चरणोंमें समर्पित कर दें। समर्पित ऐसे करें कि मैं हूँ ही नहीं, मेरी जगह भगवान् ही हैं।** अपना अहम्, अपनी सत्ता परमात्मासे अलग नहीं है। अपनी सत्ता छोड़कर हम भगवान्‌के ही शरण हो सकते हैं, और किसीके नहीं। इस प्रकार भगवान्‌के शरण होनेपर केवल भगवान् ही रहेंगे—'**वासुदेवः सर्वम्**'। ऐसे महात्माको भगवान्‌ने अत्यन्त दुर्लभ बताया है—'**स महात्मा सुदुर्लभः**'। ऐसा सुदुर्लभ महात्मा आप सब बन सकते हैं। बस, भगवान्‌के चरणोंके शरण हो जाओ। अपना कुछ भी मत रखो।

*** *** ***

श्रोता—द्विजाति (ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य)-के लिये जनेऊ लेना जरूरी क्यों है?

स्वामीजी—आप कितना ही धन कमाओ, पर टैक्स देना पड़ता है, ऐसे ही ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—तीनोंके लिये यह टैक्स है। इस विषयमें शास्त्रमें एक नयी बात आयी है कि इसको करनेसे कोई फल नहीं होगा, पर नहीं करनेसे दण्ड होगा! यद्यपि हम ऐसा नहीं मानते। कारण कि कोई भी कर्म करे, उसका फल जरूर होता है।

जनेऊ लेना बहुत जरूरी है। दो बार जन्म लेनेवालेको 'द्विज' कहते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—ये तीनों द्विज हैं। पक्षी भी द्विज हैं; क्योंकि वह पहले अण्डेके रूपमें पैदा होता है, फिर अण्डेके फूटनेसे पैदा होता है। ऐसे ही ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य पहले माता-पितासे पैदा होते हैं, फिर जनेऊ लेनेपर गायत्रीसे पैदा होते हैं। जनेऊ न लेनेसे उनका 'द्विज' नाम नहीं होता। जहाँ पूजन करनेकी बात आती है, वहाँ 'द्विज' शब्द केवल ब्राह्मणके लिये होता है; जैसे—'**देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनम्**' (गीता

१७। १४)।

गीताभवन (ऋषिकेश)-में सेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका)-ने हिन्दू-संस्कृतिकी रक्षाके लिये ही जनेऊ-संस्कार आरम्भ किया था। सेठजीने गीताप्रेस बनाकर मामूली काम नहीं किया है! बड़ा भारी काम किया है! जोरसे आनेवाले कलियुगके आगे आड़ लगा दी! उनके जानेके बाद यह काम और तेज हुआ है! पहले लगभग ६००-७०० टन कागज छपता था, अब लगभग ३३०० टन कागज छप रहा है! सन्त-महात्माओंके जानेके बाद उनका प्रभाव ज्यादा होता है। कारण कि **जबतक वे जीते रहते हैं, तबतक उनके भाव संकुचित रहते हैं। परन्तु शरीर छोड़नेके बाद उनके भाव बहुत व्यापक हो जाते हैं।**

श्रोता—माताओं-बहनोंको गायत्री-मन्त्रका जप करना चाहिये या नहीं?

स्वामीजी—बिन्कुल नहीं....बिल्कुल नहीं....बिल्कुल नहीं!

श्रोता—क्यों नहीं करना चाहिये?

स्वामीजी—क्योंकि इनको छूट दी गयी है। पतिके घर जाना और रसोई बनाना ही इनके लिये अग्निहोत्र है*। आजकल अभिमान करते हैं कि हम गायत्रीका जप करेंगे। अभिमानसे पतन होता है। नारदभक्तिसूत्रमें आया है—'**ईश्वरस्याप्यभिमानद्वेषित्वाद् दैन्यप्रियत्वाच्च**' (नारदभक्ति० २७) 'ईश्वरका भी अभिमानसे द्वेषभाव और दैन्यसे प्रियभाव है।' वे सोचते हैं कि जनेऊ लेनेसे हम बड़े हो जायँगे, पर वास्तवमें पतन होगा।

*** *** ***

श्रोता—आवाज साफ सुनायी नहीं दे रही है!

स्वामीजी—हम कहनेमें कपट तो करेंगे नहीं, सरलतासे बतायेंगे। अब सुनायी दे या न दे, यह आप जानें, आपका काम जाने! हमने देखा है कि विवाहमें तो [माइक्रोफोन, लाउडस्पीकर आदि] बढ़िया लायेंगे, पर सत्संगमें रद्दी लायेंगे! सत्संगको रद्दी काम समझ रखा है! यह मैंने देखा है, मेरी बीती हुई है, मैं जानता हूँ! सत्संगको रद्दी समझोगे तो फिर उसका महान् फल कैसे होगा? आपका भाव गिर गया! वस्तुओंका भाव गिर जाय तो दीवाला निकल जाता है! इसलिये भाव ऊँचा होना चाहिये।

सत्संगमें, भजन-ध्यानमें बढ़िया-से-बढ़िया चीज लाओ। **बढ़िया-से-बढ़िया चीज वास्तवमें पारमार्थिक कार्यके लिये ही है!** पर आपलोगोंने पारमार्थिक कार्यको रद्दी समझ रखा है। यह मेरा वर्षोंका अनुभव है! दान-पुण्यमें लगायेंगे तो रद्दी चीज लगायेंगे। थाली-गिलास लायेंगे तो ऐसे लायेंगे कि फूँकसे उड़ जाय! अन्न लायेंगे तो खराब लायेंगे। छाता ऐसा लायेंगे कि वर्षा होनेपर कपड़े काले हो जायँ!

*** *** ***

श्रोता—अगर यह कहें कि 'हे प्रभो, मैं तेरा हूँ, मैं तेरा हूँ' तो इतनेसे काम हो जायगा क्या?

स्वामीजी—केवल कहनेसे काम नहीं चलेगा। भीतरसे भगवान्‌के हो जाओ तो उद्धार हो ही जायगा। नकली कहनेसे कुछ नहीं होगा। भगवान्‌के यहाँ नकली नहीं चलती। आज सब चीजें नकली हैं। साधु भी नकली, गृहस्थ भी नकली, ब्राह्मण भी नकली, क्षत्रिय भी नकली, वैश्य भी नकली, अदरख भी नकली, हल्दी भी नकली, मिरचें भी नकली, आटा भी नकली!! सब नकली-ही-नकली है! असली

---

* **वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः। पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया॥** (मनुस्मृति २। ६७) 'स्त्रियोंका विवाह-संस्कार ही वैदिक संस्कार (यज्ञोपवीत), पतिसेवा ही गुरुकुल-निवास (वेदाध्ययन) और गृहकार्य ही अग्निहोत्र-कर्म कहा गया है।'

चीज बहुत कम है। सत्संग करनेवालोंमें भी असली सत्संग करनेवाले बहुत कम हैं, नकली ज्यादा हैं!

यहाँ मैंने एक बात कही थी कि मैं पाँच-सात-दस वर्ष रह गया तो आपको परमात्माकी प्राप्ति बहुत सुगम बता दूँगा। अब आठ-दस वर्षसे ज्यादा हो गये, और वैसी बातें मेरेको मिली हैं कि बहुत जल्दी उद्धार हो जाय, पर आपके मनमें ही नहीं है! अगर पैसा पैदा करनेकी बात बताते तो पीछे पड़ जाते! मेरे मनमें आती है कि कुछ व्यक्तियोंको इकट्ठा करके बात बतायें, पर आप लोगोंके मनमें आती ही नहीं! असली लगन ही नहीं है!

*** *** ***

श्रोता—आप कहते हैं कि सब कुछ भगवान् ही हैं, किसीसे राग-द्वेष मत करो, पर यह बात व्यवहारमें ठीक नहीं बैठती! बिना चाहे राग-द्वेष हो ही जाता है! इसका उपाय क्या है?

स्वामीजी—आप राग-द्वेषसे दुःखी हो जायँ—इतना ही आपका काम है। आपके भीतर यह होना चाहिये कि मैं राग-द्वेषको चाहता नहीं। भगवान्‌ने कहा है—'**तयोर्न वशमागच्छेत्**' (गीता ३। ३४) राग-द्वेषके वशमें नहीं होना चाहिये। तात्पर्य है कि राग-द्वेष हो जायँ तो घबराओ मत, पर इनके वशीभूत होकर क्रिया मत करो। राग-द्वेषके वशीभूत होकर काम कर बैठते हैं, इससे बहुत नुकसान होता है। इसलिये इनके वशीभूत नहीं होना है, इतना ही काम है। राग-द्वेषके अनुसार काम नहीं करोगे तो ये अपने-आप कमजोर हो जायँगे। कभी इनके वशीभूत हो भी जाय तो एक समयका उपवास कर लो। ज्यादा हो जाय तो पूरा दिन उपवास कर लो। साधारण रीतिसे यह उसका उपाय है। आप करके देखो, राग-द्वेष कम हो जायँगे।

श्रोता—'**वासुदेवः सर्वम्**' की दृष्टि होनेपर हमें सब जगह चतुर्भुजरूपसे भगवान्‌के दर्शन होंगे या द्विभुजरूपसे दर्शन होंगे?

स्वामीजी—निराकार 'है'-रूपसे दर्शन होंगे। आपका स्वरूप भी निराकार है। भगवान् कहाँ रहते हैं, क्या करते हैं, कैसे करते हैं आदि बातोंको छोड़ दो। वे कहीं भी रहें, कुछ भी करें, वे 'हैं। 'है' में सन्देह मत करो। इससे ज्यादा जाननेकी जरूरत नहीं। वह द्विभुजी है कि चतुर्भुजी है, साकार है कि निराकार है, सगुण है कि निर्गुण है, जैसा भी है, पर वह 'है'—इसमें सन्देह नहीं। वह सम्पूर्ण प्राणियोंका परम सुहृद् है। **भगवान् हैं और वे हमारे हैं—इतनी दृढ़ता रखो। इससे ज्यादा विचार करनेकी जरूरत नहीं।** उसको जाननेकी अपनी शक्ति नहीं है।

अगर राग-द्वेष हो जायँ तो यह मत समझो कि हमारा भगवान्‌से सम्बन्ध नहीं रहा। राग-द्वेषको मिटाओ, भगवान्‌का सम्बन्ध मत मिटाओ। भगवान्‌के सम्बन्धको मुख्य रखो और राग-द्वेषको गौण रखो। ऐसा समझो कि राग-द्वेष हो गये तो इसमें मेरी गलती है, पर भगवान्‌के साथ मेरा सम्बन्ध है—इसमें सन्देह नहीं। फिर सब ठीक हो जायगा।

श्रोता—पहले भगवान्‌का अनुभव हो, तब उनपर विश्वास करें। अनुभवके बिना भगवान्‌पर विश्वास कैसे करें?

स्वामीजी—पहले विश्वास करना होगा। आप बताओ, विश्वास नहीं करोगे तो क्या करोगे? संसारमें भी पहले विश्वास करते हो, फिर काम होता है। आप दूकानदारसे वस्तु भी लेते हैं तो पैसा पहले देते हैं, पीछे वस्तु लेते हैं। फिर भगवान्‌पर पहले विश्वास करनेमें क्या बाधा है? पहले विश्वास किये बिना आप जी नहीं सकते, रोटी नहीं खा सकते! विश्वास किये बिना रोटी कैसे खाओगे कि इसमें

जहर है कि क्या है! पहले विश्वास करोगे, पीछे रोटी खाओगे। हरेक काममें आप पहले विश्वास करते हो, फिर भगवान्‌ने क्या अपराध किया? आप संसारपर विश्वास करते हो, जो विश्वासके लायक नहीं है। फिर जो विश्वासके लायक है, उसपर विश्वास करनेमें क्या हर्ज है? संसारमें समझदारीसे काम करो। करनेमें सावधान, होनेमें प्रसन्न!

श्रोता—कोई आदमी गलत काम करता हो तो क्या उसको हम भगवान्‌का विधान मानकर सहन कर लें?

स्वामीजी—अपनी शक्ति हो तो विरोध करो। शक्ति नहीं हो तो क्या करोगे, बताओ! क्या यह आपके अधीन है? विदेशमें एक जगह युद्ध हो रहा था। वहाँ घोड़ेपर चढ़ी हुई एक स्त्री कहती है कि 'इस युद्धमें मेरी सम्मति नहीं है'। इसके सिवाय और क्या कर सकते हैं? गीताप्रेसके एक ट्रस्टी थे—मोहनलालजी पटवारी। वे कहते थे कि आपकी सम्मति यह है और हमारी सम्मति यह है, पर हम राजी आपकी सम्मतिमें हैं! अपनी सम्मति देनेका सबको अधिकार है, इसलिये अपनी सम्मति देते हैं, पर राजी आपकी सम्मतिमें हैं। कितनी बढ़िया बात है! शक्ति हो तो उलटफेर कर दो, नहीं तो राजी हो जाओ।

*** *** ***

परमात्मप्राप्तिको लोगोंने कठिन माना है, पर वास्तवमें वह अपना घर है। अपने घर जानेमें क्या संकोच? हम ईश्वरके अंश हैं। फिर ईश्वरकी गोदमें जानेमें संकोचकी क्या बात है? **परमात्माको प्राप्त करना अपने असली घर जाना है। वह घर कहाँ है? जहाँ आप बैठे हो, वहीं है!** जबतक आप परमात्माको नहीं पहचानते, तबतक आप मुसाफिरीमें हैं। परमात्माके घरको पहचान लोगे तो फिर उस घरको छोड़कर जा सकते ही नहीं। उसको छोड़नेकी किसीकी ताकत नहीं! छोड़कर कहाँ जायगा?

*** *** ***

नीतिमें एक वचन आता है—

शतं विहाय भोक्तव्यं सहस्रं स्नानमाचरेत्।
लक्षं विहाय दातव्यं कोटिं त्यक्त्वा हरिं स्मरेत्॥

'सौ काम छोड़कर भोजन करना चाहिये, हजार काम छोड़कर स्नान करना चाहिये, लाख काम छोड़कर दान करना चाहिये और करोड़ काम छोड़कर भगवान्‌का स्मरण करना चाहिये।'

तात्पर्य है कि करोड़ काम बिगड़ते हों तो बिगड़ने दो, पर भगवान्‌का स्मरण नहीं छोड़ना चाहिये। अतः भगवान्‌का स्मरण करना सबसे मुख्य रहा! वह नहीं करोगे तो जन्म-मरण कैसे छूटेगा? इसके बिना मनुष्यजन्मका क्या मतलब हुआ? **विचार करो, क्या आपने करोड़ काम छोड़कर भगवान्‌का स्मरण किया है? क्या आपने भगवान्‌के स्मरणको ऐसी मुख्यता दी है? पारमार्थिक उन्नतिके लिये आपने कितने काम छोड़े हैं?** आपने इतने वर्ष सत्संग किया, पर सत्संगका आदर कितना किया है? कोई पूछे कि आज सत्संगमें आये नहीं, तो कहेंगे कि आनेवाले ही थे कि जरूरी काम पड़ गया! आज जरूर आना ही था, पर वकीलसे मिलना था, वहाँ चले गये! आज आना ही था, पर बैठे-बैठे नींद आ गयी! इसका तात्पर्य हुआ कि कोई काम नहीं हो, निरर्थक समय हो तो सत्संग करें!! सत्संग सबसे रद्दी हुआ! अन्य काम मुख्य हुए, सत्संग गौण हुआ। पर विचार यह करते हैं कि हम इतने वर्षोंसे सत्संग करते हैं! आप कैसे कह सकते हैं कि हम इतने वर्षोंसे लगे हैं, अभीतक परमात्माकी प्राप्ति नहीं हुई! कहनेका अधिकार ही नहीं है। आप सत्संगको जितनी मुख्यता दोगे, उतना लाभ जरूर होगा।

हम जितना आदर करते हैं, उसकी अपेक्षा भगवान्‌की कृपा विशेष है!

श्रोता—शास्त्रविहित कर्तव्य कर्म करें या भगवान्‌का स्मरण करें?

स्वामीजी—इसका तात्पर्य कर्तव्य कर्म छोड़नेमें नहीं है, प्रत्युत भगवान्‌के स्मरणको सबसे अधिक मुख्यता देनेमें है। संसारके जितने भी काम हैं, सब-के-सब एक दिन बिगड़ेंगे ही, आप चाहे कितना ही सुधार कर लो! पर भगवान्‌का स्मरण कभी बिगड़ेगा नहीं। संसारका काम सुधर गया तो भी बिगड़ गया, बिगड़ गया तो भी बिगड़ गया! वह तो बिगड़ा हुआ ही है। भगवत्प्राप्ति कर लो तो सब काम ठीक हो जायगा। मनुष्यजन्म सफल हो जायगा। **सब कर्तव्योंका मूल कर्तव्य है—भगवान्‌का स्मरण करना। भगवान्‌के स्मरणके आगे सब कर्तव्य कर्म गौण हैं।** आप स्वयं विचार करो, कहनेसे बात समझमें नहीं आती।

आप कर्तव्य कर्मका बहाना लगाते हो, पर वास्तवमें अपनी आयुका नाश कर रहे हो! आपने कर्तव्यको समझा ही नहीं। असली कर्तव्य वह है, जिससे संसारसे ऊँचा उठ जाय। कर्मयोगसे मनुष्य संसारसे ऊँचा उठ जाता है। क्या आप कर्तव्य कर्म करनेसे संसारसे ऊँचा उठ गये? क्या पैसोंमें, बच्चोंमें, स्त्री आदिमें आपका मन नहीं जाता? क्या पैसोंके लिये झूठ-कपट नहीं करते? कर्तव्य कर्म करनेसे मनुष्य संसारसे ऊँचा उठ जाता है। उसको शान्ति मिल जाती है।

श्रोता—कोई बीमार हो तो क्या उसकी सेवा छोड़कर भगवान्‌का भजन करना चाहिये?

स्वामीजी—मैं भगवान्‌की सेवा करता हूँ—ऐसा समझकर बीमारकी सेवा करो तो क्या बाधा लगी? घरका काम भी भगवान्‌का काम समझकर करो। भगवान् कहते हैं—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

(गीता ९। २७)

'हे कुन्तीपुत्र! तू जो कुछ करता है, जो कुछ भोजन करता है, जो कुछ यज्ञ करता है, जो कुछ दान देता है और जो कुछ तप करता है, वह सब मेरे अर्पण कर दे।'

श्रोता—माताओं-बहनोंको शिवलिंगकी पूजा करनी चाहिये या नहीं?

स्वामीजी—नहीं करनी चाहिये। एक विधि होती है, एक प्रेम होता है। प्रेमसे लड़कियोंने शंकरका पूजन किया तो भगवान् प्रकट हो गये! ऐसा शिवपुराण और स्कन्दपुराणमें आता है। जहाँ भाव होता है, वहाँ विधि-निषेध नहीं होता।

श्रोता—माताओं-बहनोंको गायत्री-मन्त्र बोलना चाहिये या नहीं?

स्वामीजी—नहीं बोलना चाहिये। जिसका जनेऊ नहीं है, उस ब्राह्मणको भी गायत्री-मन्त्र बोलनेका अधिकार नहीं है।

*** *** ***

मनुष्यशरीर केवल परमात्माकी प्राप्तिके लिये मिला है। हमारे मनमें बड़ा विचार आता है कि मनुष्यशरीर प्राप्त करके भी भगवान्‌की प्राप्ति नहीं की तो क्या दशा होगी! बड़ी दुर्दशा होगी! इसलिये भाई-बहनोंसे कहना है कि आप विचार कर लो कि हमें भगवान्‌की प्राप्ति जरूर करनी है। मैं बालकपनेसे इधर लगा हूँ और मेरेको कई तरहकी बातें मिली हैं, कई तरहके उदाहरण मिले हैं। वेदान्तकी पढ़ाई भी मैंने परमात्मप्राप्तिके लिये ही की। पर उससे भी प्राप्ति नहीं हुई। अब मुझे ऐसी बातें मिली हैं, जिनसे

बहुत सुगमतासे प्राप्ति हो सकती है। आपलोग मुक्ति प्राप्त करनेके लिये ही यहाँ आये हो, गंगाजीके तटपर रहते हो, सेठजीके स्थानमें रहते हो। इतनेपर भी अगर प्राप्ति नहीं की तो यह बड़ी भारी हानिकी बात है!

योगवासिष्ठमें ईश्वरका वर्णन नहीं है। उसके विषयमें सेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका)-ने सेवारामजी महाराज और मेरे सामने कहा था कि योगवासिष्ठके रचयिता या तो भगवान्‌की बात जानते नहीं थे अथवा उन्होंने लिखा नहीं। पंचदशी आदि वेदान्तके ग्रन्थोंमें ईश्वरको कल्पित बताया गया है। एक दिन सेठजी जंगलमें बैठे थे और लेख लिखा रहे थे। उनके पास घनश्यामजी तथा एक-दो और व्यक्ति थे। मैं भी था। उस समय सेठजीने कहा कि आजकल जिन (वेदान्तके) शास्त्रोंकी बातें पढ़ते हैं, उनमें ईश्वरको कल्पित बताया गया है! अगर मेरेपर भगवान्‌की विशेष कृपा न होती तो मैं ईश्वरको कल्पित कहनेवालोंसे कम नहीं होता, मैं भी वैसा ही होता। भगवान्‌की विशेष कृपा (दर्शन) होनेसे मैं वैसा नहीं बना। अतः मेरेपर भी विशेष कृपा हुई है और आपलोग जो इधर आ गये तो आपपर भी विशेष कृपा हुई है! परन्तु अब उससे भी विशेष कृपा है! सेठजीने जो बातें बतायीं हैं, उनसे भी सुगम ऐसी बातें हैं कि बहुत सुगमतासे भगवत्प्राप्ति हो जाय! ऐसा मौका मिला है कि बहुत जल्दी कल्याण हो जाय! ऐसे मौकेपर भी अगर भगवत्प्राप्ति नहीं की तो कब करेंगे? फिर कब मौका मिलेगा, पता है? ऐसा सत्संग मिलता नहीं है। मैंने वर्षोंतक पढ़ाई की है, ऐसी बातें मिलती नहीं। ऐसी बातें मिलनेपर भी अपना उद्धार नहीं करेंगे तो क्या दशा होगी! परमात्माकी प्राप्तिका बहुत विशेष अवसर मिला है। ऐसा अवसर मिलता नहीं! इस विषयमें खोज करते मेरे बहुत दिन गये हैं। कम-से-कम मेरे व्याख्यानको सुनकर तो आपको विशेष ध्यान आना चाहिये कि आजसे पाँच-सात वर्ष पहले, दस वर्ष पहले, पन्द्रह वर्ष पहले, बीस वर्ष पहले, तीस-चालीस वर्ष पहले ऐसी बातें नहीं थीं। मेरे व्याख्यानसे आपलोगोंको होश होना चाहिये कि पहले कैसी बातें कहता था, आजकल कैसी बातें कहता हूँ। मेरी बातोंमें प्रतिवर्ष फर्क पड़ता है। पिछले वर्षकी अपेक्षा इस वर्ष ज्यादा फर्क पड़ा है! पहले 'गीता साधक-संजीवनी' लिखी, उसके बाद 'परिशिष्ट' लिखा। परिशिष्ट लिखनेके बाद फिर बातें आ रही हैं। अब एक टीका और लिखनेकी मनमें आ रही है! मैं अठारह वर्षकी उम्रसे व्याख्यान दे रहा हूँ। मेरे यह लगन लगी हुई है कि पारमार्थिक उन्नति जल्दी तथा सुगमतासे कैसे हो? मैं इसकी खोजमें लगा हुआ हूँ। मेरी खोज अभीतक मिटी नहीं है!

मैंने दो बातें आपको कही हैं—**एक तो 'हम परमात्माके अंश हैं', और एक 'यह संसार भगवत्स्वरूप है'।** ये दोनों बातें बड़ी विलक्षणतासे ऐसे कही हैं कि हरेकके समझमें आ जाय। ऐसी सुगम बातें मिलनेपर भी अगर कल्याण नहीं करते हैं तो क्या दशा होगी! ऐसी बातें आपको हरेक जगह, व्याख्यानमें, सत्संगमें मिलेंगी नहीं! इसलिये **यहाँका सत्संग किये हुए, ठीक समझे हुए व्यक्ति दूसरे सत्संगमें ठहर नहीं सकते।** यह बात मैं अपनी तरफसे नहीं कहता हूँ, प्रत्युत दूसरोंसे सुनकर कहता हूँ।

*** *** ***

संसार तो अपनी भावनासे है, वास्तवमें हम सब-के-सब ही हरदम परमपिता परमेश्वरकी गोदमें बैठे हैं। पृथ्वी भगवान्‌की गोद है। आप कृपा करके इतनी बात याद रखो। करना कुछ नहीं है, केवल याद रखना है। हम भगवान्‌की गोदमें बैठे हैं, हमारेपर भगवान्‌की दृष्टि है, हमारेपर भगवान्‌का हाथ है। हरदम आनन्द-ही-आनन्द है! बालक रोता है तो अपनी मूर्खतासे रोता है। अगर वह माँकी गोदीमें रोता है तो फिर हँसेगा कहाँ? माँकी गोद तो अनन्द देनेवाली है। जैसे बालक बेसमझ होता है, ऐसे ही हम भी बेसमझ हैं। भूमि भगवान्‌की प्रकृति होनेसे भगवान्‌का स्वरूप है—'**भूमिरापोऽनलो वायुः**'

(गीता ७। ४)। हम रात-दिन भगवान्‌की ही गोदीमें बैठे हैं। कितने आनन्दकी बात है!

जब लक्ष्मणजी वनवासकी आज्ञा लेनेके लिये माँ सुमित्राके पास गये तो माँने कहा—

रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम्।
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखम्॥

(वाल्मीकि० अयोध्या० ४०। ९)

'बेटा! तुम श्रीरामको ही अपने पिता महाराज दशरथ समझो, जनकनन्दिनी सीताको ही अपनी माता समझो और वनको ही अयोध्या समझो। इस प्रकार समझकर तुम सुखपूर्वक प्रस्थान करो।'

जहाँ रामजी रहते हैं, वहीं अयोध्या है—***'अवध तहाँ जहँ राम निवासू'*** (मानस, अयोध्या० ७४। २)। इसलिये जब माताएँ रामजीसे मिलीं, तब गोस्वामीजीने कहा कि जैसे गाय बछड़ेको छोड़कर जंगलमें चरने गयी हों और दिनका अन्त होनेपर बछड़ेसे मिलनेके लिये नगरकी तरफ दौड़कर आती हैं, ऐसे माताएँ रामजीकी तरफ दौड़कर आयीं।

जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृहँ चरन बन परबस गईं।
दिन अंत पुर रुख स्त्रवत थन हुंकार करि धावत भईं॥

(मानस, उत्तर० छन्द ६)

विचार करें, जंगलमें गाय गयी कि बछड़ा गया? जंगलमें तो बछड़ा (राम) गया। इसका तात्पर्य यह हुआ कि जहाँ रामजी हैं, वहाँ अयोध्या है। रामजी वनमें चले गये तो पीछे अयोध्या जंगल हो गयी!

माता सुमित्राने लक्ष्मणजीसे कहा कि वनमें भी सीतारामके रूपमें माता-पिता तुम्हारे साथ हैं। जब माता-पिता साथमें हों तो फिर बालकको और क्या चाहिये? ऐसे ही आप सदा ही माता-पिताकी गोदमें हैं! आपको सदा आनन्दमें, हरदम प्रसन्न रहना चाहिये! भगवान्‌की स्मृति समस्त विपत्तियोंका नाश करनेवाली है—**'हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम्'** (श्रीमद्भा० ८। १०। ५५)। उस भगवान्‌की गोदीमें हम हरदम रहते हैं। गोदीमें रहेंगे तो उनकी याद अपने-आप आयेगी। केवल याद रखो कि हम भगवान्‌की गोदीमें हैं।

*** *** ***

मेरे मनमें आती है कि आप इस बातको पकड़ लें कि 'हम भगवान्‌के हैं'। जैसे अपनी माँ दीखती है, ऐसे ही मनमें दीखना चाहिये कि मेरी माँ भगवान् हैं!

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देव देव॥

भगवान्‌का नाता विलक्षण है! संसारके नाते कई कर लिये, पर कोई टिकेगा नहीं। भगवान्‌का सम्बन्ध कभी मिटेगा नहीं। भगवान् मेरे माँ-बाप हैं—यह मानना बड़ा सुगम है। ऐसा मानकर सब जगह निःशंक, निधड़क रहो। आपको यह बात दीखती होगी कि स्वामीजी रोजाना-रोजाना यही बात कहते हैं, पर रोजाना कहनेपर भी आप नहीं मानते तो फिर कैसे मानोगे! माँ होकर भगवान् सदा साथ रहते हैं—यह बात भी याद रखनेकी है! वे सब प्राणियोंके हृदयमें रहते हैं।

सिवाय भगवान्‌के कोई हमारा नहीं है। सेवा करनेके लिये सब हमारे हैं, पर हमारा कोई नहीं

है। ***'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई'***—यह बात हृदयमें पकड़ लेनेकी है। जिसमें आपका स्नेह हो, उसकी सेवा करो, पर उससे कुछ भी चाहो मत। सेवा करनेसे कर्जा उतर जाता है। किसी मरे हुए आदमीकी विशेष याद आती है तो उसका अर्थ यह हुआ कि उससे जितना सुख लिया है, उतना उसको सुख दिया नहीं। उस सुखका कर्जा है। कर्जा रहनेसे उसकी याद आती है। इसलिये यह बात सदा ही याद रखो, सबकी सेवा करो और कुछ चाहो मत। शान्ति मिल जायगी।

*** *** ***

अगर आप आध्यात्मिक उन्नति, तत्त्वज्ञान, मुक्ति चाहते हो तो गीता 'साधक-संजीवनी' का सातवाँ और नवाँ अध्याय जरूर पढ़ना चाहिये। इनमें आध्यात्मिक उन्नतिके लिये बहुत लाभकी बातें आयी हैं! सातवाँ अध्याय प्रेमपूर्वक पढ़कर उसके अनुसार आचरण करे तो कल्याण हो जायगा। 'परिशिष्ट' में बहुत ज्यादा अच्छी बातें आयी हैं। गीतामें ज्यों-ज्यों गहरा उतरते हैं, त्यों-त्यों नयी-नयी विलक्षण बातें मिलती हैं।

अगर आप ध्यान दें तो ***'सब जग ईस्वररूप है'***—यह साफ दीखेगा। कारण कि जब अपरा प्रकृति अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश आदि भगवान्‌का स्वरूप है तो भगवान्‌के सिवाय क्या बाकी रहा? **जो मिलने और बिछुड़नेवाला होता है, वह अपना नहीं होता—यह एक बात भी इतनी विलक्षण है कि इसकी जितनी महिमा कही जाय, उतनी थोड़ी है!** संसारकी मात्र वस्तु ऐसी ही है। इसलिये अनन्त ब्रह्माण्डोंमें तिल-जितनी चीज भी अपनी नहीं है। केवल परमात्मा अपने हैं, और कोई अपना नहीं है। दूसरोंको अपना समझनेसे बहुत धोखा, विश्वासघात होता है! इसलिये रात-दिन भगवान्‌से कहते रहो कि 'हे मेरे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। मेरा आप सबसे यही कहना है कि एक भगवान्‌की तरफ ख्याल रखो। केवल भगवान् ही अपने हैं और हरदम अपने साथ रहते हैं। नरकमें जाओ तो भी वे साथ हैं, स्वर्गमें जाओ तो भी साथ हैं, चौरासी लाख योनियोंमें जाओ तो भी साथ हैं! ऐसा सदा साथ रहनेवाला भगवान्‌के सिवाय और कोई नहीं है। संसारके साथ जितना सम्बन्ध जोड़ोगे, उतना ही पतन होगा।

संसारमें मान-बड़ाई, वाह-वाह अच्छा लगता है, पर परिणाममें धोखा होगा! संसारमें हमें जो प्रिय लगते हैं, वे सब हमें रुलानेवाले हैं—**'प्रियं रोत्स्यति'** (बृहदारण्यक० १। ४। ८)। यह सब रोनेकी सामग्री है! **संसार सेवा करनेलायक है। यह सुख लेनेलायक बिल्कुल नहीं है.....बिल्कुल नहीं है.....बिल्कुल नहीं है!!** संसारसे, वाह-वाहसे, मान-बड़ाईसे, आदर-सत्कारसे पतन होगा। पर यह बात जल्दी समझमें नहीं आती!

*** *** ***

श्रोता—भेदभक्ति और अभेदभक्ति क्या है?

स्वामीजी—वास्तवमें असली भक्ति अभेदभक्ति है। भगवान्‌को दूर समझना, अपनेको अलग समझना भेदभक्ति है।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

(श्रीमद्भा ७। ५। २३)

'भगवान्‌के गुण-लीला-नाम आदिका श्रवण, उनका कीर्तन, उनके रूप-नाम आदिका स्मरण, उनके चरणोंकी सेवा, पूजा-अर्चा, वन्दन तथा उनमें दासभाव, सखाभाव और आत्मसमर्पण—यह नौ प्रकारकी

भक्ति है।'

इस नवधा भक्तिमें तीन त्रिक हैं—श्रवण-कीर्तन-स्मरण, अर्चन-वन्दन-पादसेवन, और दास्य-सख्य-आत्मनिवेदन। तीनों उत्तरोत्तर भगवान्‌के नजदीक हैं। ग्रन्थोंमें आया है—

द्वैतं मोहाय बोधात्प्राग्जाते बोधे मनीषया।
भक्त्यर्थं कल्पितं द्वैतमद्वैतादपि सुन्दरम्॥

(बोधसार, भक्ति० ४२)

'बोधसे पहलेका द्वैत मोहमें डाल सकता है; परन्तु बोध हो जानेपर भक्तिके लिये कल्पित (स्वीकृत) द्वैत अद्वैतसे भी अधिक सुन्दर (सरस) होता है।'

मुक्तिके बाद अद्वैतभक्ति होती है। मुक्तिसे पहलेका द्वैत अपना किया हुआ है, और मुक्तिके बादका द्वैत भगवान्‌का किया हुआ है। पहले द्वैतके बाद अद्वैत है, फिर अद्वैतके बाद द्वैत है। भगवान् श्रीकृष्ण और श्रीजी अद्वैतरूपसे हैं। वह (मुक्तिके बाद) प्रेमाभक्ति है, जो भगवान् अपनी तरफसे देते हैं। वह प्रेम अपने प्रेमसे विलक्षण है। वह अद्वैतभक्ति है। भागवतके एकादश स्कन्धमें एकनाथजीने अभेदभक्ति माना है। भगवान्‌में प्रेमकी भूख है। वह भूख मिटती नहीं है। इसलिये वह (भगवान्‌की तरफसे आया) प्रेम प्रतिक्षण वर्धमान है। उसीको 'रास' कहते हैं। भगवान्‌को देखकर श्रीजी प्रसन्न होती हैं और श्रीजीको देखकर भगवान् प्रसन्न होते हैं।

नवधा भक्ति साधनभक्ति है। इस साधनभक्तिसे साध्यभक्ति पैदा होती है—'**भक्त्या सञ्जातया भक्त्या**' (श्रीमद्भा० ११। ३। ३१)। साध्यभक्ति अद्वैत होती है। यह प्रेमाभक्ति है, जो तत्त्वज्ञानसे भी विशेष है। शरणागत भक्त अपने-आपको भगवान्‌के समर्पित कर देता है, अपने-आपको मिटा देता है। केवल भगवान् ही रह जाते हैं। फिर भगवान्‌की तरफसे प्रेम होता है।

अभी भगवान्‌को भक्ति देनी है—ऐसा कई बातोंसे अनुमान होता है! नहीं तो *'अनुभव भगवद् भगति का भाग्यवान् को होय'* भक्तिका अनुभव हरेकको होता नहीं। भक्ति करते रहते हैं, पर पता नहीं लगता। परन्तु आजकल विशेषतासे पता लगता है! अभी भगवान्‌का मन भक्तिका प्रचार करनेका है। इसलिये बहुत सुगमतासे तत्त्व प्राप्त हो सकता है। थोड़ा भजन करनेपर भी विलक्षणता, अलौकिकता, विचित्रता आती है। अतः आपलोग चेष्टा करो तो भगवान्‌के अच्छे भक्त बन सकते हो।

शरणागतिमें अपने-आपको भगवान्‌के सर्वथा समर्पित कर दे कि भगवान् ही हैं, मैं हूँ ही नहीं। मैं-पन कल्पित है, सच्चा नहीं है। इसलिये अपनी सत्ता तो रहती है, पर मैं-पन मिट जाता है। मैं-पन मिटते ही भगवान्‌के साथ अभेद हो जाता है। अभेद होनेपर फिर भगवान्‌की तरफसे भेद होता है। वह अद्वैतभक्ति होती है।

स्वयं भगवान् उस प्रेमरसके भूखे हैं। प्रेमसे भगवान् तृप्त हो जाते हैं। भगवान्‌को तृप्त करनेकी ही भक्तकी भावना होती है। भगवान् भी प्रतीक्षा करते हैं कि ऐसा भक्त मेरेको मिले! भगवान्‌की भूख कैसी होती है—यह भगवान् जानें, उनके भक्त जानें!

सज्जनो! आप तो रात-दिन भगवान्‌में लग जाओ। अपने भीतर उत्कट अभिलाषा जाग्रत् करो कि भगवान्‌में प्रेम हो जाय। उठते-बैठते, जागते-सोते एक भगवान् ही याद आयें। **'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'—यह बहुत बढ़िया मन्त्र है!**

*** *** ***

श्रोता—अपने जिन संस्कारोंको हम बदलना चाहते हैं, उनको बदलनेका सबसे बढ़िया उपाय क्या

है?

स्वामीजी—सबसे बढ़िया उपाय है—उद्देश्य बदल देना। विचार करें कि हमारे जीवनका उद्देश्य क्या है? हमें अपने जीवनमें क्या करना है? वास्तवमें हमारे जीवनका उद्देश्य परमात्माकी प्राप्ति करना होना चाहिये। इसके सिवाय किसीसे कोई मतलब नहीं। कोई राजी हो या नाराज हो, ठीक हो या बेठीक हो, नफा हो या नुकसान हो, लाभ हो या हानि हो, अनुकूलता मिले या प्रतिकूलता मिले, अपने उद्देश्यपर दृढ़ रहे। इसमें ढुलमुलपना न रहे, सन्देह न रहे। सुख पायें, चाहे दुःख पायें, हमें आध्यात्मिक उन्नति करना है।

श्रोता—हमारा यह वहम है कि हमलोग परिवारका पालन-पोषण करते हैं, तभी काम चलता है। यह वहम कैसे निकले?

स्वामीजी—गीताप्रेसमें सेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका) सबसे मुख्य थे, पर उनके जानेपर भी गीताप्रेसका काम बढ़ा है, घटा नहीं है! गीताप्रेसको सेठजीने ही बनाया था। सेठजीने जितना उद्योग किया है, वैसा उद्योग हर आदमी कर सकता नहीं! ताकतसे बाहरकी बात है! सेठजीके समान शक्तिशाली मेरेको कोई दीखा नहीं! सेठजीने जितना काम किया है, उतना और किसीने किया हो तो बताओ! वे भी चले गये! भाईजी भी चले गये! मुख्य-मुख्य आदमी चले गये, फिर भी काम चलता है! काम घटा नहीं है, प्रत्युत बहुत ज्यादा मात्रामें बढ़ा है! इतना उनके मौजूद रहते समय नहीं था। सत्संगमें पहलेसे अधिक उपस्थिति होती है, कागज पहलेसे ज्यादा छपता है, पुस्तकोंकी बिक्री भी ज्यादा होती है! अतः मेरे रहनेसे काम चलता है, मैं नहीं रहूँगा तो काम नहीं होगा—यह कोरा वहम है। जो होना है, वह तो होगा। हमारे समान कई चले गये, फिर भी संसार चलता है।

आप अपना एक उद्देश्य बना लो। फिर सब काम ठीक हो जायगा। घरवालोंकी चिन्ता मत करो कि कैसे काम चलेगा!

* * * * * * * * *

श्रोता—अपना इष्टदेव हनुमान् हो और गुरुमन्त्र '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' हो तो क्या दोनोंका सामंजस्य बैठ जायगा?

स्वामीजी—हाँ, बैठ जायगा। ऊपरसे दो दीखते हैं, पर भीतरसे सब एक हैं। परमात्मतत्त्व एक है, रूप अनेक हैं।

श्रोता—स्त्रियोंको शालग्रामकी पूजा करनी चाहिये कि नहीं?

स्वामीजी—स्त्रियोंको शालग्रामकी, हनुमान्‌जीकी और शिवलिंगकी पूजा नहीं करनी चाहिये। परन्तु यह शास्त्रकी विधि है। भीतरका भाव हो तो विधि नहीं चलती। जहाँ प्रेम होता है, वहाँ विधि नहीं होती। ऐसी भक्त कन्याएँ हुई हैं, जिन्होंने पूजा की तो शिवजी प्रसन्न होकर प्रकट हो गये!

आप सच्चे हृदयसे भगवान्‌में लगे रहो। फिर सब ठीक होगा, यह नियम है।

तुलसी सीताराम कहु दृढ़ राखहु बिस्वास।
कबहूँ बिगरे ना सुने रामचंद्र के दास॥

सांसारिक काममें तो नफा और नुकसान दोनों होते हैं, पर पारमार्थिक काममें नुकसान होता ही नहीं। सुख-दुःख आते हैं, अनुकूलता-प्रतिकूलता आती है, पर नुकसान नहीं होता। प्रतिकूलता आनेपर भी नुकसान नहीं होता, प्रत्युत फायदा होता है।

आजकल अच्छी बात बतानेवाले बहुत कम मिलते हैं। व्याख्यान देनेवाले, सत्संग करानेवाले, लोगोंको इकट्ठा करनेवाले बहुत मिलेंगे, पर जिससे जीवका कल्याण हो जाय—ऐसी बात बतानेवाले बहुत कम मिलेंगे!

* * * * * * * * *

जो यहाँ सत्संगमें आते हैं, वे आदमी मामूली नहीं हैं। हमारेको वे इतने ऊँचे नहीं दीखते हैं, पर मैं विचार करता हूँ तो वे मामूली आदमी नहीं हैं। जो आते हैं, वे विशेष पुण्यशाली हैं, भाग्यशाली हैं, महात्माओंकी कृपाके पात्र हैं, नहीं तो आ नहीं सकते। सेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका)-ने पूर्वजन्मकी बात बतायी थी तो कहा था कि उस समय मेरा परिचय बहुत था। वे आदमी अब पहलेके संस्कारके कारण इकट्ठे होते हैं। इसलिये यहाँके सब-के-सब आदमी वन्दनीय हैं! जो यहाँ आते हैं, उनपर भगवान्‌की कृपा विशेष है। अतः आप दृढ़तासे यह निश्चय कर लें कि हमें इसी जन्ममें अपना कल्याण करना है। इसमें जो देरी होती है, वह सही नहीं जानी चाहिये। आध्यात्मिक उन्नतिमें समय नहीं लगता, आज अभी हो सकती है! गोस्वामीजीने लिखा है—

बिगरी जनम अनेक की सुधरै अबहीं आजु।
होहि राम को नाम जपु तुलसी तजि कुसमाजु॥

(दोहावली २२)

इसमें खास बात है—***'होहि राम को नाम जपु'*** अर्थात् भगवान्‌का होकर भगवान्‌को पुकारे; जैसे—बालक माँका होकर माँको पुकारता है। इसमें नामजप दामी नहीं है, प्रत्युत भगवान्‌का होना दामी है। नामजप निरन्तर नहीं होता, पर 'मैं भगवान्‌का हूँ'—इसमें अन्तर पड़ता ही नहीं!

परमात्माकी प्राप्ति भविष्यपर निर्भर नहीं है। **समयसे अतीत वस्तु समयके अधीन नहीं होती।** कितने ही जन्मोंके पाप हों, बहुत जल्दी खत्म हो जायँगे। पापकी जड़ नहीं होती। गुफामें पड़ा हुआ लाखों वर्षोंका अन्धकार दीपक करते ही नष्ट हो जाता है। अन्धकारमें ताकत नहीं है। शास्त्रोंमें ऐसी छोटी-छोटी कई बातें हैं, जिनसे बहुत जल्दी पारमार्थिक उन्नति हो सकती है। जैसे, **'जो मिलती है और बिछुड़ जाती है, वह अपनी नहीं होती'—यह इतनी दामी बात है, जिसका आदमी अन्दाजा नहीं लगा सकता!** अपनी चीज वह है, जो पहलेसे ही मिली हुई है और कभी बिछुड़ती ही नहीं। ऐसे केवन भगवान् ही हैं। वे पहलेसे ही सबके हृदयमें विराजमान हैं। वे हमसे कभी दूर जाते नहीं, जा सकते ही नहीं। आपने संसारको सत्ता और महत्ता दी हुई है, तभी वह ठहरा हुआ है, नहीं तो उसमें ठहरनेकी सामर्थ्य ही नहीं है!

भूत, भविष्य और वर्तमान—ये तीन काल हमारी दृष्टिमें हैं। ये तीन काल अज्ञानमें होते हैं। भगवान्‌की दृष्टिमें तीन काल नहीं हैं। वे सदा ही वर्तमान हैं। इसलिये भगवान्‌की कृपासे उनकी प्राप्ति बहुत जल्दी हो सकती है। हमारी उत्कट अभिलाषा होनी चाहिये। **'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' पुकारते-पुकारते कभी हृदयसे पुकार निकली तो उसी क्षण काम बन जायगा!** भगवान्‌की कृपासे जो कार्य होता है, वह अपने उद्योगसे नहीं होता।

* * * * * * * * *

श्रोता—काम-धन्धेमें लगे रहनेसे समय नहीं मिलता, फिर भजन कैसे करें?

स्वामीजी—काम-धन्धा ही तो भजन है! भजनको आपने अलग माना है, यह गलती है। ऐसा मानो कि भगवान्‌का ही काम-धन्धा करते हैं। भगवान्‌की आज्ञाका पालन करते हैं।

कर्णवासकी बात है। भाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) बिस्तर बाँधकर आ गये कि अब मैं एकान्तमें रहकर भजन करूँगा। सेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका)-ने कहा कि एकान्तमें भजन करना अच्छा है, पर भगवद्भावोंका प्रचार करना ज्यादा बढ़िया है। भाईजी बोले कि भगवद्भावोंका प्रचार तो भगवान्‌की कृपासे होता है, मनुष्य थोड़े ही कर सकता है! सेठजीने उत्तर दिया कि भगवद्भावोंका प्रचार करना भक्तका काम है, भगवान्‌का काम नहीं है। यह भक्तकी जिम्मेवारी है। फिर भाईजी वापिस गोरखपुर चले गये। यह मेरे सामनेकी बात है।

श्रोता—किसी व्यक्तिने गुरु बना लिया और गुरुजीने चेलेको छोड़ दिया तो क्या उस चेलेका कल्याण हो जायगा?

स्वामीजी—कल्याण होना मुश्किल है! कल्याण करनेकी शक्ति रखनेवाला गुरु चेलेको छोड़ता नहीं, और छोड़ दे तो कल्याण होता नहीं! परन्तु आजकलके गुरु तो पैसोंके गुरु हैं। उनकी कोई इज्जत नहीं है। उनमें चेलेका कल्याण करनेकी शक्ति नहीं है। जिसमें कल्याण करनेकी ताकत है, वह छोड़ दे तो उस चेलेको भगवान् भी माफ नहीं कर सकते!

*** *** ***

श्रोता—परमात्मा सर्वत्र व्यापक हैं, फिर भी लोगोंकी दुःख-निवृत्ति और परमानन्दकी प्राप्ति क्यों नहीं हो रही है?

स्वामीजी—सर्वत्र परिपूर्ण परमात्माकी तरफ ध्यान नहीं है!

आनँद-सिंधु-मध्य तव वासा। बिनु जाने कस मरसि पियासा॥

(विनयपत्रिका १३६। २)

गंगाजीके किनारे बैठे हैं और प्यासे मर रहे हैं और जल रहे हैं! गंगाजीके किनारे प्यास और जलन कैसी? उल्टी बात है! वास्तवमें गंगाजीकी तरफ ध्यान ही नहीं है! गंगाजी यहाँ हैं, इसका पता ही नहीं है! उसीका पता लगानेके लिये ही यह सत्संग-समारोह है!

श्रोता—वैद्य दवा देता है तो उसपर विश्वास हो जाता है, कोई रास्ता बता देता है तो विश्वास हो जाता है, पर '**वासुदेवः सर्वम्**' जैसी ऊँची बात आप हमको बता रहे हैं, फिर भी सहजतापूर्वक विश्वास क्यों नहीं होता? इसमें असली कारण क्या है? हमारी भूल कहाँ है?

स्वामीजी—संसारका महत्त्व आपके हृदयमें अंकित है। आपके भीतर उत्पत्ति-विनाशशील वस्तुका महत्त्व है, पर अनुत्पन्न अविनाशी तत्त्वका महत्त्व नहीं है। उधर आपका ख्याल ही नहीं है। यही कारण है।

श्रोता—आप जो परा और अपरा प्रकृतिकी बात बताते हैं, वह हमारे हृदयमें अच्छी तरहसे बैठ गयी है। परन्तु भगवत्प्राप्ति क्या होती है, उसका साक्षात्कार क्या होता है, यह हमारी समझमें नहीं आया!

स्वामीजी—यह समझमें नहीं आयेगा। यह तो मानना ही पड़ेगा। भगवान् समझमें नहीं आते। माँ-बाप समझमें आते हैं क्या? माँ-बाप समझमें नहीं आते, उनको तो मानना ही पड़ता है। जैसे आपने माँ-बापको माना है, ऐसे ही भगवान्‌को मान लो। भगवान्‌की प्राप्ति हो जायगी। माननेके सिवाय और कर भी क्या सकते हो! चाहे उसको मान लो, चाहे उसकी खोज करो, पर समय बर्बाद मत करो।

श्रोता—संसार नाशवान् है और सब कुछ परमात्माका स्वरूप है—इन दोनोंमें हमारे लिये श्रेष्ठ बात

कौन-सी है?

स्वामीजी—आपमें अगर राग है तो मिटाना श्रेष्ठ है, और वैराग्य है तो मानना श्रेष्ठ है।

श्रोता—संसार अपना नहीं है, संसारकी कोई वस्तु अपनी नहीं है, फिर हम बैठे-बैठे करें क्या?

स्वामीजी—राम-राम करो और सबकी सेवा करो। सब वस्तुएँ सेवाके लिये हैं, सुख भोगनेके लिये नहीं। मनुष्यमात्रके लिये दो ही बातें हैं—भगवान्‌को याद करो और संसारकी सेवा करो। कुछ बाकी नहीं रहेगा, सब ठीक हो जायगा।

*** *** ***

श्रोता—आपने कहा है कि ज्ञान होनेके बाद भी एक सूक्ष्म अहम् रहता है, जिसके कारण अनेक शास्त्रीय मतभेद पैदा होते हैं, लेकिन भक्तिमें यह सूक्ष्म अहम् भी नहीं रहता। परन्तु भक्तिमें भी तो अनेक प्रकारके मतभेद उपलब्ध होते हैं?

स्वामीजी—भक्तिके आचार्योंमें भी मतभेद रहता है। परन्तु प्रेमलक्षणा भक्तिमें अहंकार तथा उससे होनेवाला मतभेद नहीं रहता। गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने लिखा है—

प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभिअंतर मल कबहुँ न जाई॥

(मानस, उत्तर० ४९। ३)

श्रोता—साधनकी खास बात क्या है?

स्वामीजी—साधनकी खास बात है—उत्कट अभिलाषा हो जाय। केवल परमात्माकी जोरदार चाहना हो जाय। भोग और संग्रहकी इच्छा न रहे। जीनेकी इच्छा भी न रहे! केवल कल्याणकी इच्छा रहे।

पहली खास बात यह है कि अनन्त ब्रह्माण्डोंमें तिल-जितनी चीज भी मेरी नहीं है। जब मेरा कुछ नहीं है, तो फिर मुझे कुछ नहीं चाहिये—यह हो जायगा। फिर मैं कुछ नहीं—यह हो जायगा अर्थात् मैं-पन नहीं रहेगा। मेरा कुछ नहीं, मुझे कुछ नहीं चाहिये और मैं कुछ नहीं—ये तीन बातें होनेपर पूर्णता हो जायगी।

मेरा कुछ नहीं है—यह खास बात है। स्थूल, सूक्ष्म और कारण—तीनों ही शरीर मेरा स्वरूप नहीं हैं। शरीरको अपना स्वरूप माननेसे ही सम्पूर्ण दोष पैदा होते हैं—'**देहाभिमानिनि सर्वे दोषाः प्रादुर्भवन्ति**'। इसलिये सबसे पहले यह बात आनी चाहिये कि एक भगवान्‌के सिवाय मेरा कुछ नहीं है।

*** *** ***

श्रोता—मैं अपना इष्ट माँ (देवी)-को मानती हूँ और जप भगवान् कृष्णका करती हूँ, तो मन्त्रका जप किसी औरका हो और इष्ट किसी औरका हो—ऐसा हो सकता है क्या?

स्वामीजी—हो सकता है। कृष्णरूपसे भी मेरी माँ ही है। माँ ही रामरूप बनी है, माँ ही कृष्णरूप बनी है, माँ ही विष्णुरूप बनी है, माँ ही शिवरूप बनी है, माँ ही शक्तिरूप बनी है, माँ ही गणेशरूप बनी है, माँ ही सूर्यरूप बनी है। सब स्वरूप हमारी माँका ही है—यह पक्का जान लो।

एक साधु थे। वे पढ़े-लिखे नहीं थे। वे देवीकी प्रार्थना करते समय '**नमस्तस्यै**' न कहकर '**नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नमः**' इस तरह बोलते थे। एक पढ़े-लिखे आदमीने उनसे कहा कि तुम अशुद्ध मत बोलो। पुरुषके लिये तो '**नमस्तस्मै**' कहना चाहिये, पर स्त्रीके लिये '**नमस्तस्यै**' कहना चाहिये। साधुने '**नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः**' कहना शुरू कर दिया; परन्तु पहलेका अभ्यास पड़ा होनेसे बार-बार मुँहसे '**नमस्तस्मै**' ही निकल जाता था! उस बतानेवाले आदमीके स्वप्नमें माँ आकर

छातीपर बैठ गयी और बोली कि 'तू मेरेको स्त्री समझता है क्या? तेरे प्राण ले लूँगी! तूने उसको क्यों मना किया? वह जैसा कहे, उसीमें मैं राजी हूँ! क्योंकि वह भावसे कह रहा है'। तात्पर्य है कि आपके मनमें ठीक जँच जाना चाहिये कि हमारी माँ ही राम, कृष्ण आदि सब बनी है।

ईश्वरकोटिके पाँच देवता हैं—विष्णु, शंकर, सूर्य, गणेश और शक्ति। अगर शक्तिको इष्ट मानें तो शक्ति ईश्वर हो गयी और शेष चारों देवता हो गये। विष्णुको इष्ट मानें तो विष्णु ईश्वर हुए और शेष चारों देवता हो गये। मन्दिर-निर्माणके विषयमें शास्त्रमें आता है कि जो ईश्वर है, उसका बीचमें मन्दिर बनेगा और शेष चारोंका चारों तरफ मन्दिर बनेगा। वे साधकोंकी भावनाके अनुसार अलग-अलग हैं, पर स्वरूपसे अलग-अलग नहीं हैं। मूलमें एक ही तत्त्व है। इसलिये खूब प्रेमसे, आदरसे अपने साधन को किये जाओ। जो भी रूप सामने आये, उसको माँका ही रूप मानो।

श्रोता—कामनाके रहते हुए परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है क्या?

स्वामीजी—साधक प्राप्तिके नजदीक पहुँच जाता है, और परमात्माकी कृपासे कामना नष्ट हो जाती है। यह भक्तोंकी बात है! ज्ञानमार्गमें पहले अहंकारका नाश होता है, पीछे ममताका नाश होता है। भक्तिमार्गमें पहले ममताका नाश होता है, पीछे कामनाका नाश होता है। यह गीतामें आया है।

श्रोता—भगवान्‌के हृदयमें रहते हुए भी माया हमें दबा देती है तो क्या माया भगवान्‌से भी प्रबल है?

स्वामीजी—माया भगवान्‌से प्रबल नहीं है। आप ही इस मायाको स्वीकार करके इसको प्रबल बना देते हो। भगवान्‌से प्रार्थना करो तो ठीक हो जायगा।

मान-बड़ाई और कनक-कामिनी—यह खास माया है। कनककी अपेक्षा भी कामिनी विशेष है। आपने अपनेको मायाके वशमें कर लिया। आप सुखके लिये मायाके वशमें हो जाते हैं। अच्छे-अच्छे साधकोंके लिये यह सुखासक्ति ही बाधक है। रो करके, हृदय खोल करके 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' पुकारो। ठीक हो जायगा। इसमें दस, बीस, पचीस अथवा चालीस वर्ष भी लग जायँ तो भले ही लग जायँ, पर अन्तमें विजय आपकी ही होगी, इसमें सन्देह नहीं है। आपकी प्रार्थना कमजोर होगी तो ज्यादा दिन लगेंगे, और प्रार्थना जोरदार होगी तो जल्दी हो जायगा।

सबके लिये सुखासक्ति ही बाधक है। सुखकी आसक्तिके कारण ही साधन ठीक नहीं बनता। इससे ही बाधा लगती है।

*** *** ***

श्रोता—मेरा बेटा तम्बाकू, पान-मसाला खाने लग गया है, बुरी आदत पड़ गयी है, कहनेपर छोड़ता नहीं है! अब क्या उपाय करें?

स्वामीजी—आपमें ताकत हो तो मान लो कि वह मेरा नहीं है। वह कोई मुसलमान है, जो हमारे यहाँ आ गया है! उसमें अपनापन बिल्कुल छोड़ दो और भगवान्‌को दे दो तो वह शुद्ध, निर्मल हो जायगा। वास्तवमें वह आपका नहीं है। उसको अपना माननेसे अशुद्धि आ गयी। यह वस्तु मेरी है—ऐसा मानते ही वस्तु अशुद्ध हो जाती है! लड़केको मेरा माननेसे वह बिगड़ा हुआ है। अगर हृदयसे मेरा न मानकर भगवान्‌का मान लें तो उसका स्वभाव सुधर जायगा। ममता छोडनेसे वस्तु शुद्ध हो जाती है। भगवान्‌के अर्पण करनेसे वस्तु प्रसाद बन जाती है। जो सबमें ममता छोड़ देते हैं, वे सन्त हो जाते हैं। ममता वस्तुओंको भी अशुद्ध करती है और अपनेको भी अशुद्ध करती है।

*** *** ***

मनुष्यशरीर बड़ा दुर्लभ है—ऐसा शास्त्रोंमें जगह-जगह कहा है। वेदोंकी, पुराणोंकी, सन्तोंकी, शास्त्रोंकी वाणीमें जगह-जगह मनुष्यशरीरको दुर्लभ बताया है। परन्तु आज लोगोंमें इस बातकी मुख्यता हो रही है कि मनुष्य जन्मे ही नहीं! यह (गर्भपात) महान् हत्या है.....महान् हत्या है.....महान् हत्या है!! बड़ा भारी पाप है! बड़ा भारी अन्याय है! स्कन्दपुराणमें ऐसी बात आयी है कि पहले जितने कलियुग आये हैं, उनमें यह कलियुग सबसे भयंकर है!* इसमें आदमियोंकी बुद्धि बहुत भ्रष्ट होगी। इतना भयंकर कलियुग पहले नहीं आया है। शास्त्रोंमें किसी भी कलियुगमें गर्भपात करने, नसबन्दी करनेकी बात आयी हो तो बताओ!

अगर मनुष्य सावधान रहकर साधन करे तो बहुत जल्दी कल्याण हो सकता है। कलियुगमें भगवद्भजनकी महिमा सब युगोंसे बहुत ज्यादा है—

चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ॥

(मानस, बाल० २२। ४)

'यों तो चारों युगोंमें और चारों ही वेदोंमें नामका प्रभाव है; परन्तु कलियुगमें विशेषरूपसे है। इसमें तो (नामको छोड़कर) दूसरा कोई उपाय ही नहीं है।'

श्रोता—कलियुगमें भगवान्‌का नाम बड़ा है या कीर्तन बड़ा है?

स्वामीजी—नामका स्मरण करो, नामका जप करो अथवा नामका कीर्तन करो—एक ही बात है।

*** *** ***

जब मैंने पढ़ाई कर ली, तब विचार किया कि अब क्या करना चाहिये? तो यह विचार किया कि अब सब छोड़कर आध्यात्मिक उन्नतिमें लगना है। मैंने तरह-तरहकी बातें सुनीं, तरह-तरहके साधन किये। लगभग संवत् १९८७ के बाद मैं विशेषतासे लगा। मेरे विद्यागुरुजीने आग्रह किया कि तुम मण्डलेश्वर, महन्त बन जाओ। मैंने कहा कि मेरी रुचि नहीं है। वे बोले कि मण्डलेश्वर बन जाओ तो मैं प्रचार करूँगा। मेरेको प्रचार करनेके बहुत प्रकार आते हैं। मैंने कहा कि मण्डलेश्वर, महन्त बननेका मेरा मन नहीं है। वे बोले—तो फिर यार विरक्त, त्यागी बन जाओ। मैंने कहा—यह बात ठीक है। यह बात मेरे मनमें सुहाती है! फिर संवत् १९९० में सेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका)-के पास आया। मेरी दृष्टिमें ऐसा (सेठजीके समान) साधुओंमें, गृहस्थोंमें कोई देखनेमें नहीं आया। मैंने 'कल्याण' में सेठजीके लेख पढ़े। लेखोंको पढ़नेसे मेरेपर असर पड़ा कि ये विद्याके जोरसे नहीं लिखते। ये अनुभवी पुरुष हैं। बिना अनुभव वे ऐसा लिख सकते नहीं। अतः इनके पास जाना है और लाभ उठाना है—ऐसा सोचकर मैं सेठजीके पास आया। उनके पास आनेके बाद फिर और जगह जानेकी मनमें नहीं आयी। उनसे बढ़कर मेरेको कोई दीखा नहीं। अतः फिर मैं कहीं नहीं गया। पहले मैं उनको 'कल्याण' के लेखकके रूपमें जानता था। उनका 'गीताप्रेस' से कोई सम्बन्ध है—इसका पता मेरेको नहीं था। उनके पास आनेके बाद पता लगा कि 'गीताप्रेस' इनका ही बनाया हुआ है!

गीतामें रुचि मेरी पहलेसे ही थी। पूरी गीता याद थी। रुपये-पैसे रखना संवत् १९८७ में ही छोड़ दिया था। कहीं जाना नहीं, कोई चीज लेनी नहीं, किसी चीजकी आवश्यकता नहीं, फिर पैसोंकी क्या

---

*आद्यं कृतयुगं चान्तं तदन्येभ्यो विशिष्यते॥ अष्टाविंशकलिश्चैव शेषः प्रावर्त्त अन्यतः।

(स्कन्दपुराण, माहेश्वर० कुमारिका० ४०। ७४-७५)

'प्रथम सत्ययुग, अन्तिम सत्ययुग तथा अट्ठाईसवाँ कलियुग—ये अन्य युगोंसे कुछ विशिष्टता रखते हैं। शेष युगोंकी प्रवृत्ति औरोंके समान ही होती है।'

जरूरत है! गीता हमें याद है। कोई पुस्तक पढ़नी हो तो पुस्तकालयमें जाकर पढ़ लेंगे। रोटी-कपड़ा जैसा मिल जाय, ले लेंगे। इस प्रकार इस तरफ लग गया। इसके बाद मेरेको बहुत बढ़िया-बढ़िया बातें मिलीं। फिर गीतापर 'साधक-संजीवनी' टीका भी लिख दी। टीका लिखनेके बाद मनमें आयी तो 'परिशिष्ट' लिख दिया। अब गीतापर और भी लिखनेकी मनमें आती है!

आप सबसे यह कहना है कि आप तत्परतासे साधनमें लग जाओ। मेरा मन करता है कि सभी भाई-बहन पारमार्थिक उन्नतिमें रात और दिन लग जायँ। आपकी बड़ी भारी कृपा होगी! नहीं लगें तो लाचारी है, क्या करें! पारमार्थिक उद्देश्यवाले व्यक्ति मेरेको बहुत कम दीखते हैं! अपने कल्याणकी जोरदार इच्छा नहीं दीखती! आप सच्चे हृदयसे लग जाओ तो मेरे चित्तमें बहुत प्रसन्नता होगी।

*** *** ***

श्रोता—शरीर मैं नहीं तथा मेरा भी नहीं—यह बात सत्संगमें तो खूब अच्छी तरहसे समझमें आती है, पर व्यवहारमें यह बात जाग्रत् नहीं रहती। आपने यह भी कहा कि भगवान्‌को पुकारो, पर पुकारनेमें भी भीतरसे व्याकुलता पैदा नहीं होती। ऐसी स्थितिमें क्या करना चाहिये?

स्वामीजी—प्रार्थना करनी चाहिये। ऐसा नहीं होनेमें कारण है कि संसारके विषय जितने प्रत्यक्ष दीखते हैं, शरीर-इन्द्रियाँ-मनपर जितना विश्वास है, उतना शास्त्रपर विश्वास नहीं है। इसलिये भगवान्‌से प्रार्थना करो। **कम-से-कम, कम-से-कम 'हम परमात्माके हैं'—इतना भाव तो सत्संग करनेवाले हरेकके भीतर रहना चाहिये।** इसमें पाप बाधक नहीं हैं, प्रत्युत आपमें लगनकी कमी बाधक है। अपनी लगन बढ़ाओ। मनुष्यमें यह विवेकशक्ति है, जिससे वह सुखासक्तिका त्याग करके भगवान्‌में लग सकता है।

मनुष्य ही ऐसा है, जो देवताओंसे भी बढ़कर है। देवता भोगोंमें लगे हुए हैं; क्योंकि उनके यहाँ भोगोंकी भरमार है। नरकोंमें जीव दुःखोंसे व्याकुल हैं। देवता सुखसे और नारकीय जीव दुःखसे भूले हुए हैं। मध्यम दर्जेके मनुष्य ही हैं, जो सुखमें भी भूले हुए नहीं हैं और दुःखमें भी भूले हुए नहीं हैं, प्रत्युत अज्ञानसे भूले हुए हैं। अज्ञान सत्संगसे मिटता है, मिट सकता है, और मिटा है।

श्रोता—भगवान्‌में अनन्त प्रेम है। वे तो प्रेमकी मूर्ति ही हैं। उनमें प्रेमकी कमी तो है नहीं। फिर वे मनुष्यसे प्रेमकी इच्छा क्यों रखते हैं?

स्वामीजी—भगवान्‌में प्रेमकी कमी नहीं है, पर प्रेम एक ऐसी विलक्षण चीज है कि पेट तो भरता नहीं और वस्तु समाप्त होती नहीं! कितनी ही बढ़िया चीज हो, चाहे तो पेट भर जाता है, चाहे वस्तु समाप्त हो जाती है, पर प्रेममें ये दोनों ही बातें नहीं हैं।

श्रोता—प्रेमस्वरूप भगवान्‌ने ही संसारका निर्माण किया है, फिर उनके बनाये हुए संसारमें अनन्त प्रकारके दुःख क्यों हैं, बुराई क्यों है? उनमें बुराई नहीं है तो फिर हमारेमें बुराई कहाँसे आ गयी?

स्वामीजी—जितनी बुराई है, सब आपने सुखभोगसे पैदा की है। इसलिये आपपर जिम्मेवारी है। अगर भगवान्‌की की हुई बुराई होती तो जिम्मेवारी भगवान्‌पर होती। आप सुखकी इच्छाका त्याग कर दो तो बुराई मिट जायगी। इसमें भगवान् सहायता करनेके लिये तैयार हैं।

आप किसी सुखसे तृप्त नहीं होते और दुःखसे घबराते हो, यह क्या है? यह भगवान्‌का बुलावा है। भगवान् आपको अपनी तरफ खींच रहे हैं, इसलिये सुखसे आपकी तृप्ति नहीं होती और दुःखसे घबराहट होती है। परन्तु दुःखको आप मिटा नहीं सकते। दुःख भगवान्‌की कृपासे आता है। **आपलोग मानें, चाहे न मानें, एक मार्मिक बात है कि दुःख आपका जितना उपकार करता है, उतना सुख उपकार करता ही नहीं, कर सकता ही नहीं!** सब-के-सब मनुष्य दुःखके ऋणी हैं। दुःखका ऋण कोई चुका

सकता ही नहीं; क्योंकि सुख पैदा होते ही दुःख नहीं रहता! इसलिये भगवान्‌की बड़ी कृपा होती है, तब दुःख आता है! जो प्रतिकूलताके दुःखसे दुःखी होता है, वह दुःखके तत्त्वको नहीं जान सकता! दुःखके तत्त्वको वही जान सकता है, जो दुःखके कारणकी खोज करता है। दुःख आनेपर सुखकी इच्छा करना 'दुःखका भोग' है और दुःखके कारणकी खोज करना 'दुःखका प्रभाव' है। दुःखका भोग जीवका पतन करनेवाला और दुःखका प्रभाव उन्नति करनेवाला है। दुःखके प्रभावसे मनुष्य जितना ऊँचा उठता है, उतना शास्त्रोंके ज्ञानसे नहीं उठता।

केवल संसारका क्षणिक सुख ही दुःखका कारण है। गीतामें लिखा है—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

(गीता ५। २२)

'हे कुन्तीनन्दन! जो इन्द्रियों और विषयोंके संयोगसे पैदा होनेवाले भोग (सुख) हैं, वे आदि-अन्तवाले और दुःखके ही कारण हैं। अतः विवेकशील मनुष्य उनमें रमण नहीं करता।'

सांसारिक सुखसे आपकी शक्ति क्षीण होती है, और पारमार्थिक सुखसे आपकी शक्ति बढ़ती है—यह नियम है। पारमार्थिक सुखसे अपार शक्ति बढ़ती है—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥

(गीता ६। २२)

'जिस लाभकी प्राप्ति होनेपर उससे अधिक कोई दूसरा लाभ उसके माननेमें भी नहीं आता और जिसमें स्थित होनेपर वह बड़े भारी दुःखसे भी विचलित नहीं किया जा सकता।'

सुखकी इच्छाके बिना दुःख होता ही नहीं। सुखकी इच्छा करनेसे दुःख मिटता ही नहीं, मिटेगा ही नहीं, मिट सकता ही नहीं। इसलिये दुःखके प्रभावको अपनाना है, दुःखके भोगको नहीं। फिर वास्तविक उन्नति होगी।

श्रोता—मिलन और विरह—इन दोनोंमें कौन-सा साधन श्रेष्ठ है?

स्वामीजी—विरह बहुत श्रेष्ठ है। परन्तु विरह भगवान् देते हैं। सन्तोंकी वाणीमें आया है—***'दरिया हरि किरपा करी, बिरहा दिया पठाय।'*** विरहसे बहुत उन्नति होती है। आप भगवान्‌में प्रेम करो तो विरह पैदा होगा। विरह पैदा हो तो समझो कि भगवान्‌ने भेजा है। आप हरदम भगवान्‌को याद करो, 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं' पुकारो। सब काम ठीक हो जायगा। आप कितने ही अयोग्य हों, योग्य हो जाओगे।

श्रोता—भगवान् जल्दी-से-जल्दी दर्शन दें और आँखोंसे कभी ओझल ही न हों—इसका क्या उपाय है?

स्वामीजी—उपाय है—प्रार्थना। आप हरदम 'हे नाथ! हे मेरे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं' कहते रहो। सब काम ठीक हो जायगा। भगवान्‌की प्रार्थनासे जो लाभ होता है, वह अपने उद्योगसे नहीं होता। एकदम सच्ची, निश्चित बात है!

*** *** ***

हमलोगोंके भीतर एक बात जँची हुई है कि हरेक काम अभ्याससे होगा। परन्तु वास्तवमें तत्त्वज्ञान अभ्याससे नहीं होता। यह मार्मिक बात है और बहुत बढ़िया बात है! **अभ्याससे एक नयी स्थिति**

पैदा होती है, जड़से सम्बन्ध-विच्छेद नहीं होता। यह मेरी अनुभव की हुई बात है। रस्सेके ऊपर चलनेके लिये अभ्यास करना ही पड़ता है, पर दो और दो चार होते हैं—इसको जाननेमें अभ्यास होता ही नहीं। अभ्यास और चीज है, अनुभव और चीज है। अभ्याससे बोध नहीं होता.....नहीं होता.....नहीं होता! अभ्याससे एक नयी स्थिति बनती है। तत्त्व स्थितिसे अतीत है। परन्तु जिसने ज्यादा लोगोंका सत्संग किया है, ज्यादा पुस्तकें पढ़ी हैं, उसको यह बात समझनेमें कठिनाई होगी। इस बातका मैं भुक्तभोगी हूँ। मैंने काफी पढ़ाई की है और वर्षोंतक अभ्यास किया है, इसलिये मेरेको इस बातका पता है! मैंने व्याकरणका अभ्यास किया है, काव्यका किया है, साहित्यका किया है, न्यायका किया है, योगका किया है, वेदान्तका किया है! आचार्यतककी पढ़ाई की हुई है। यद्यपि मैं अपनेको विशेष विद्वान् नहीं मानता, तथपि विद्याका अभ्यास मैंने किया हुआ है। भीतरमें अभ्यासकी बात जँची होनेसे जल्दी कल्याण नहीं होता।

शरीर तुम नहीं हो, शरीर तुम्हारा नहीं है और शरीर तुम्हारे लिये नहीं है—इसका अभ्यास करो तो वर्ष बीत जायँगे, सफेद बाल हो जायँगे, पर बोध नहीं होगा। वास्तवमें कैसा ही अन्त:करण हो, बोध अभी इसी क्षण हो सकता है! अन्त:करण शुद्ध होनेसे बोध होगा—ये बातें ठगाईकी हैं! वास्तवमें बोधके लिये अन्त:करण-शुद्धिकी जरूरत नहीं है, प्रत्युत अन्त:करणसे सम्बन्ध-विच्छेदकी जरूरत है। कितना ही अभ्यास करो, अहम् साथमें रहेगा ही, कभी छूटेगा नहीं। अभ्याससे अहंकार नहीं छूटता—यह मार्मिक बात है। अभ्याससे आप विद्वान् बन जाओगे, पर तत्त्वबोध नहीं होगा। जो चीज जैसी है, उसको वैसी जान लेनेमें अभ्यास कैसा? अभ्याससे एक नयी स्थिति बनेगी। तत्त्व स्थितिसे अतीत है। अभ्याससे आप स्थितिसे अतीत नहीं होंगे, नहीं होंगे, नहीं होंगे! यह मेरे अनुभवकी बात है!

पढ़े-लिखेको जल्दी बोध नहीं होगा, पर अपढ़को तत्काल हो जायगा! क्योंकि पढ़ा-लिखा अभ्यास करेगा। बोधमें भविष्य होता ही नहीं! जो बोधमें भविष्य मानते हैं, वे बोधको ठीक नहीं जानते। अभ्याससे बहुत समय लगेगा, और समय लगनेपर भी बोध नहीं होगा। बोधके लिये अन्त:करण-शुद्धिकी जरूरत नहीं है, केवल जोरदार चाहनाकी जरूरत है।

आप शरीर नहीं हो—इतनी ही बात समझनी है, कोई लम्बी-चौड़ी बात नहीं। शरीरको आप 'मैं' भी कहते हो और 'मेरा' भी कहते हो। शरीर मैं हूँ—यह अभेदभावका सम्बन्ध है, और शरीर मेरा है—यह भेदभावका सम्बन्ध है। आप दोनोंमें एक बात कहो, चाहे अभेदभावका सम्बन्ध कहो, चाहे भेदभावका सम्बन्ध कहो। शरीरको 'मैं' भी कहना गलती है और 'मेरा' भी कहना गलती है। आप 'मेरी घड़ी है'—यह तो कहते हो, पर 'मैं घड़ी हूँ'—यह नहीं कहते। वास्तवमें शरीर 'मैं' भी नहीं है और 'मेरा' भी नहीं है। जब चौरासी लाख योनियोंवाले शरीर 'मैं' नहीं, तो फिर यह शरीर 'मैं' कैसे हुआ? **जब चौरासी लाख योनियोंमें जानेपर वे शरीर आपके नहीं हुए, तो फिर यह शरीर आपका कैसे हो गया?** शरीर मैं नहीं हूँ—यह सीधी-सरल बात है। शरीर तो छूटेगा।

जबतक अहम् रहेगा, तबतक बोध नहीं होगा—'**निर्ममो निरहङ्कारः**' (गीता २। ७१; १२। १३)। गीतामें कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग—तीनों ही योगोंमें निर्मम-निरहंकार होनेकी बात आयी है।

श्रोता—आप तत्काल बोध होनेकी बात कहते हैं, पर हमें तत्काल अनुभव नहीं हो रहा है? हम तो तत्काल अनुभव चाहते हैं!

स्वामीजी—अनुभव नहीं होनेका दु:ख होता है क्या? असली चाहना होगी तो नींद नहीं आयेगी, भोजन नहीं भायेगा! ऐसी चाहना होगी तो तत्काल अनुभव हो जायगा।

श्रोता—बिना अभ्यासके तत्त्वप्राप्तिकी तेज इच्छा, तीव्र जिज्ञासा हो सकती है क्या?

स्वामीजी—हाँ, हो सकती है। भूख लगती है, प्यास लगती है तो क्या अभ्याससे लगती है? अभ्याससे नयी स्थिति बनती है।

श्रोता—अभ्याससे नयी स्थिति होते-होते जिज्ञासा हो जायगी!

स्वामीजी—यह बात ठीक है, पर यह लम्बा रास्ता है! कितने जन्मोंमें बोध होगा, पता नहीं! अन्तमें अभ्यास छूटेगा। शरीर-मन-बुद्धिसे सम्बन्ध छूटेगा। तत्त्वका बोध जड़ताके छूटनेसे होगा, जड़ताके द्वारा नहीं होगा। अभ्यास जड़ताके द्वारा ही होता है। शरीर-मन-बुद्धिके बिना अभ्यास हो ही नहीं सकता। जड़ताकी सहायतासे ही अभ्यास होगा। जो जड़ताकी सहायतासे होगा, उस अभ्याससे जड़ता कैसे छूटेगी? जड़ताका सर्वथा त्याग होनेसे ही अपने स्वरूपमें स्थिति होगी।

श्रोता—गीतामें आये '**अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय**' (गीता १२। ९) 'अभ्यासयोगके द्वारा तू मेरी प्राप्तिकी इच्छा कर'—इसका क्या अर्थ हुआ?

स्वामीजी—यहाँ अभ्यास नहीं कहा है, प्रत्युत 'अभ्यासयोग' कहा है। 'योग' का अर्थ समता है—'**समत्वं योग उच्यते**' (गीता २। ४८)।

सबके भीतर अभ्यासकी बात बैठी हुई है कि जो कुछ होगा, अभ्याससे होगा। इसीलिये बोध होनेमें कठिनता हो रही है!

यद्यपि नामजप, कीर्तन, प्रार्थना भी अभ्यासके अन्तर्गत हैं, तथापि ये अभ्याससे तेज हैं। 'हे नाथ! हे नाथ!' यह पुकार अभ्याससे बहुत तेज है। पुकार, नामजप आदिमें भगवान्‌की सहायता है, पर अभ्यासमें अपनी सहायता है। अभ्यासमें अपने उद्योगसे काम होता है, पर पुकारमें भगगवान्‌की कृपा काम करती है। आप अभी अभ्यासके राज्यमें ही बैठे हुए हैं। आपके संस्कार अभ्यासके हैं। अगर आप नामजप, कीर्तन, प्रार्थनामें लग जाओ तो आपको बहुत लाभ होगा।

*** *** ***

मेरेको खास बात यह जँचती है कि जड़ और चेतनका विभाग होना चाहिये। जितने भी साधक हैं, उनके लिये आरम्भमें ही जड़ और चेतनका विभाग करना बहुत आवश्यक है। इसीलिये गीतामें सबसे पहले (गीता २। ११ से २। ३० तक) देह और देही, शरीर और शरीरीका विवेचन हुआ है। इस विवेचनको टीकाकार आत्मा-अनात्माका विवेचन बताते हैं, पर इन बीस श्लोकोंमें आत्मा-अनात्माका नाम ही नहीं है! न ईश्वरका नाम है, न जगत्‌का नाम है, न मायाका नाम है, न अविद्याका नाम है, न प्रकृतिका नाम है! इसलिये मैं एक बात कहा करता हूँ कि गीताका विवेचन और शास्त्रका विवेचन दो तरहका है। **कई आदमियोंने ऐसा कहा है और वे प्रचार करते हैं कि गीताका अर्थ समझना हो तो पहले शास्त्रोंको पढ़ो। शास्त्र पढ़े बिना गीताका अर्थ समझमें नहीं आता। परन्तु मैं कहता हूँ कि शास्त्र पढ़नेसे गीताका अर्थ समझमें आयेगा ही नहीं!**

आपको यह बात खास जाननी चाहिये कि आप शरीरी (शरीरवाले) हैं, शरीर नहीं हैं। आप शरीरसे अलग हैं। चौरासी लाख योनियोंमें किसी शरीरके साथ आप नहीं रहे, फिर इस शरीरके साथ आप कैसे रहेंगे? यह ज्ञान पहले होना चाहिये कि शरीर अलग है, आप अलग हो। शरीर जड़ है और शरीरी चेतन है। थोड़ा विचार करो, चौरासी लाख योनियाँ आपने छोड़ दीं तो क्या मनुष्यशरीरको साथ रखोगे? क्या आप शरीरके साथ रहोगे? क्या शरीर आपके साथ रहेगा? **मनुष्यशरीरकी जो महिमा है, वह ढाँचेको लेकर नहीं है, प्रत्युत उसमें जो विवेकशक्ति है, उसकी महिमा है।**

मैं तीन बातें बार-बार कहता हूँ। 'शरीर मैं हूँ'—यह बात नहीं है, 'शरीर मेरा है'—यह बात भी नहीं है, और तीसरी खास बात है, जिसपर आप ध्यान नहीं देते, वह है—'शरीर मेरे लिये नहीं है'। शरीर आपके लिये कैसे? वह तो छूट जायगा। शरीरसे परमात्माकी प्राप्ति होगी—यह बात है ही नहीं। जड़ताके द्वारा चेतनकी प्राप्ति कैसे होगी? अगर परमात्माकी प्राप्ति चाहते हो तो बुराई छोड़ो। शरीर संसारकी सेवाके लिये है, मेरे लिये नहीं। शरीर, धन-सम्पत्ति, वैभव आदि सब-की-सब सामग्री संसारके लिये ही है।

शास्त्रकी विधि है कि श्राद्धमें ब्राह्मणको एक दिनमें एक ही जगह भोजन करना चाहिये, दूसरी जगह नहीं। मेरेको एक सज्जनने सुनाया कि आजकल श्राद्धमें ब्राह्मण चार-पाँच जगहका निमन्त्रण ले लेते हैं; क्योंकि भोजनके साथ दक्षिणा भी मिलती है। सब जगह थोड़ा-थोड़ा खा लिया और दक्षिणा ले ली! ऐसी स्थितिमें परमात्माकी प्राप्ति कैसे होगी? अच्छे-अच्छे साधु भी पैसा लेने और मकान बनानेमें लगे हुए हैं! एकान्तमें रहते हुए भी शरीरका ही पालन-पोषण करेंगे। एकान्तमें भजन ज्यादा होता है या नींद ज्यादा आती है, बताओ?

आप देह नहीं हो, प्रत्युत देही अर्थात् देहवाले हो। वास्तवमें देहवाला कहना भी बिल्कुल असंगत है; परन्तु कैसे बताया जाय? गीतामें देह-देहीका वर्णन है, पर आप देही (देहवाले) नहीं हो। परन्तु देही कहे बिना समझायें कैसे? समझानेका और कोई तरीका नहीं है। इसलिये गीताने देही स्वीकार किया है। क्या देह सदा आपके साथमें रहेगा? क्या आप सदा देही बने रहेंगे? नहीं रहेंगे, नहीं रहेंगे, नहीं रहेंगे! अतः 'देही' कहनेका तात्पर्य देहसे अलग बतानेमें है।

आप बातें तो बड़ी-बड़ी बनाते हो, पर मुख्यता शरीरकी रहती है। आप जड़ताका तो पोषण कर रहे हो, और चाहते हो परमात्माकी प्राप्ति! कैसे होगी? **समाधि भी परमात्माकी प्राप्ति करानेवाली नहीं है। यह सिद्धियाँ प्राप्त करानेवाली चीज है।** जड़ताको महत्त्व देकर चिन्मयताको कैसे प्राप्त करोगे? अगर आप जड़तासे रहित हो जाओ तो चिन्मयताकी प्राप्तिके सिवाय और क्या होगा, बताओ?

*** *** ***

श्रोता—आप कहते हैं कि लगन लगनेसे तत्काल भगवत्प्राप्ति हो सकती है, तो जिनको भगवान्‌की कृपाका भरोसा है, उनको लगन बढ़ानी चाहिये या भगवान्‌की कृपाका भरोसा बढ़ाना चाहिये?

स्वामीजी—कृपाका भरोसा बढ़ाओ तो लगन अपने-आप बढ़ जायगी, मनका उत्साह बढ़ जायगा, चिन्ता मिट जायगी, शंका मिट जायगी, सन्देह मिट जायगा।

श्रोता—आप कहते हैं कि नामजप करना, कीर्तन करना भी अभ्यास है, तो फिर जल्दी भगवान्‌की प्राप्ति कैसे हो?

स्वामीजी—नामजप करना, कीर्तन करना अभ्यास नहीं है, प्रत्युत पुकार है। अभ्यासमें अपना बल होता है, पुकारमें जिसकी पुकार होती है, उसका बल होता है। साधन करनेकी अपेक्षा पुकार बढ़िया है। पुकार साधनसे बढ़कर है। जैसे बालक 'माँ! माँ!' करके पुकारता है, ऐसे 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' कहकर भगवान्‌को पुकारो। अपने बलका भरोसा न रहे, तब पुकार असली, बढ़िया होती है। अपने बलका किंचिन्मात्र भी भरोसा न रहे, केवल भगवान्‌की कृपाका भरोसा रहे। भगवान्‌की कृपासे असम्भव भी सम्भव हो जाता है।

श्रोता—आप कहते हैं कि एकान्तकी इच्छा करनेवाला भोगी होता है। यह बात समझमें नहीं आयी!

स्वामीजी—एकान्त मिलनेपर वह राजी होता है कि नहीं? राजी होना भोग ही तो है! भोगीको

परमात्मा थोड़े ही मिलते हैं!

श्रोता—हमलोगोंमें वैराग्य तो है नहीं, इसलिये शरीर मैं नहीं, मेरा नहीं, मेरे लिये नहीं—यह बात भीतर ठहरती नहीं, ऊपर-ऊपर रह जाती है। क्या करें?

स्वामीजी—भगवान्‌की कृपापर विश्वास कम है, इसके सिवाय और कोई कारण नहीं। अपने बलसे नहीं होगा। भगवान्‌में अपार, अनन्त बल है। भगवान् हैं और वे सर्वोपरि हैं, अद्वितीय हैं, सब समयमें हैं, सब जगह हैं, सबके हैं, सबके पासमें हैं, सर्वज्ञ हैं, परम सुहृद् हैं। उनके समान हित करनेवाला दूसरा कोई है ही नहीं।

उमा राम सम हित जग माहीं। गुरु पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं॥

(मानस, किष्किन्धा० १२। १)

श्रोता—पूरा विश्वास नहीं होता महाराजजी!

स्वामीजी—भगवान्‌से माँगो। भगवान्‌से मिलता है।

श्रोता—*'सब जग ईस्वररूप है'*—यह माननेमें बाधा क्या आ रही है?

स्वामीजी—बाधा है—संयोगजन्य सुखकी इच्छा। **सुखभोग इतना बाधक नहीं है, जितनी सुखभोगकी लालसा बाधक है।**

*** *** ***

श्रोता—शरणागत भक्तका आचरण, व्यवहार कैसा होना चाहिये? उसमें क्या सावधानी बरतनी चाहिये?

स्वामीजी—शरणागतके लिये मुख्य बात यही है कि मैं भगवान्‌का हूँ। यह होनेसे भगवान्‌के नाते सब बर्ताव अच्छा होगा। स्वतः-स्वाभाविक त्यागका, प्रेमका, आदरका, स्नेहका बर्ताव होगा। भगवान् सबके परम सुहृद् हैं—'**सुहृदं सर्वभूतानाम्**' (गीता ५। २९); अतः वह भी सबका परम सुहृद् होगा। वह सबको अच्छा लगेगा, प्यारा लगेगा, और सबकी सेवा करेगा। तनसे, मनसे, वचनसे, धनसे, विद्यासे, बुद्धिसे, योग्यतासे, शक्तिसे सबकी सेवा करेगा।

श्रोता—आपने कहा था कि भजनसे भी ज्यादा शुद्धि भगवान्‌को अपना माननेसे होती है। इस बातको थोड़ा विस्तारसे बतानेकी कृपा करें।

स्वामीजी—भगवान्‌का सेवन, भगवान्‌का प्रेम, भगवान्‌के शरण होना—इन सबका नाम 'भजन' है। परन्तु इनसे भी बढ़कर भगवान्‌को अपना मानना है। जैसे बच्चा अपनेको माँका मानता है, ऐसे अपनेको भगवान्‌का मान ले।

भजन, स्मरण आदि तो साधन हैं, पर 'मैं भगवान्‌का हूँ'—यह साधन नहीं है। साधनको तो हरदम याद रखना पड़ता है, पर 'मैं भगवान्‌का हूँ'—यह याद रहता है, रखना नहीं पड़ता। 'माँ मेरी है'—यह याद रखना नहीं पड़ता और भूलता है ही नहीं! भगवान्‌का होनेका तात्पर्य है कि सदा भगवान्‌का हो गया। अब याद करना नहीं पड़ेगा। आप अपने माँ-बापके सम्बन्धको याद करते हो क्या? याद नहीं करते, तो भी स्वतः अटूट सम्बन्ध रहता है। मैं माँका हूँ, माँ मेरी है—इसके लिये कुछ करना नहीं पड़ता। 'मैं भगवान्‌का हूँ'—इसमें भूल होती ही नहीं। भूल तब मानी जाय, जब यह मान ले कि 'मैं भगवान्‌का नहीं हूँ'। संसारके सभी सम्बन्ध कच्चे हैं, पर भगवान्‌का सम्बन्ध पक्का है। हम अपनेको भगवान्‌का नहीं मानते थे—यह भूल थी। **अगर यह स्वीकार कर लो कि 'हम भगवान्‌के हैं' तो निहाल हो गये! निहाल हो गये! निहाल हो गये!!** मैं प्रायः हरेक व्याख्यानमें इस बातपर जोर देता

हूँ। मात्र जीव भगवान्‌के हैं—यही सार बात है, यही असली बात है। यही स्मृति प्राप्त होना है—**'नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा'** (गीता १८। ७३)। **भगवान् मेरे हैं, मैं भगवान्‌का हूँ—यह असली भजन है।**

श्रोता—मैं भगवान्‌को गुरु मानता हूँ। साधु-सन्त मिलते हैं तो पूछते हैं कि तुम्हारा सम्प्रदाय और गुरु कौन है? मैं कहता हूँ कि मेरे तो भगवान् गुरु हैं। वे कहते हैं कि सम्प्रदाय और गुरुके बिना तुम आगे नहीं बढ़ सकते।

स्वामीजी—उनसे कहो कि आगे आप नहीं बढ़ सकते, हम बढ़ सकते हैं! बढ़ेंगे क्या, हम तो आगे बढ़ गये!! भगवान् मेरे हैं—यह माननेमें संकोच मत करो। बिल्कुल निश्चिन्त हो जाओ। सम्प्रदाय तो पैदा किये हुए हैं, पर भगवान् सदासे हैं।

श्रोता—मुझे भोग प्यारे लगते हैं, भगवान् प्यारे नहीं लगते! क्या करूँ?

स्वामीजी—यह प्रार्थना करो कि 'हे प्रभो, आप हमें प्यारे लगो'। मेरी एक ही माँग है, और कोई माँग नहीं।

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन॥

(मानस, अयोध्या० २०४)

'(भरतजी बोले—) मुझे न धनकी, न धर्मकी तथा न कामकी ही रुचि (इच्छा) है, और न मैं मोक्ष ही चाहता हूँ। मैं तो बस यही वरदान माँगता हूँ कि जन्म-जन्ममें मेरा श्रीरामजीके चरणोंमें प्रेम हो। इसके सिवाय और कुछ नहीं चाहता।'

आप रात और दिन कहते रहो कि 'हे नाथ, आप मुझे प्यारे लगो'। आपकी इच्छा जितनी तेज होगी, उतना जल्दी काम होगा। हम भूलसे संसारी हैं। वास्तवमें तो हम भगवान्‌के ही अंश हैं।

श्रोता—भगवान्‌की कृपा कैसे प्राप्त हो?

स्वामीजी—भगवान्‌की कृपा सबपर है। यह मनुष्यशरीर उस कृपाकी पहचान है!

कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥

(मानस, उत्तर० ४४। ३)

चौरासी लाख योनियाँ पूरी नहीं हुईं, पर भगवान्‌ने कृपा करके बीचमें ही मनुष्यशरीर दे दिया कि यह अपना कल्याण कर ले। मनुष्यशरीरकी बारी आनेसे पहले ही भगवान्‌ने मनुष्यशरीर दे दिया, अपने उद्धारका मौका दे दिया! फिर मनमें अपने उद्धारकी जागृति पैदा की। फिर यहाँ उत्तराखण्डमें गंगाजीके किनारे लाये और यहाँ सत्संगमें बैठाया। यह कोरी कृपा-ही-कृपा है! हमारा कल्याण तो होगा ही!! सेठजीने साफ कहा था कि तीन आदमियोंको यहाँ सत्संगमें लाकर बैठा दो, तुम्हारी मुक्ति हो जायगी! यह कमीशन है! कमीशनसे ही मुक्ति हो जाय!!

*** *** ***

हृदयसे यह मान लो कि भगवान्‌के सिवाय अपना कोई नहीं है, कोई नहीं है, कोई नहीं है! अपने केवल भगवान् हैं, केवल भगवान् हैं, केवल भगवान् हैं! यह बात दृढ़तासे हृदयमें धारण कर लो। जब मेरा कोई नहीं है, तो फिर मेरेको कुछ भी नहीं चाहिये। शरीर अपना हो तो रोटी चाहिये, पानी चाहिये, कपड़ा चाहिये, मकान चाहिये। पर शरीर भी अपना नहीं है। यह निरन्तर छूट रहा है, और छूट जायगा। जितने वर्ष बीत गये, उतना तो छूट ही गया! मीराबाईका खास वेदवाणीकी तरह यह

वाक्य है—*'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई'*।

अपने-आपको भगवान्‌के चरणोंमें अर्पण कर दो, उनके शरण हो जाओ। शरण होना भी ऐसा होना चाहिये कि सर्वथा ही शरण हो जाय अर्थात् मैं हूँ ही नहीं, केवल भगवान् ही हैं! मेरा कुछ नहीं है, मुझे कुछ नहीं चाहिये और मैं कुछ नहीं। मेरी जगह केवल भगवान् ही हैं।

अपना कुछ है ही नहीं, मेरेको कुछ चाहिये ही नहीं, फिर चिन्ता किस बातकी? शोक किस बातका? भय किस बातका? पर ममता करोगे तो दुःख पाओगे।

*** *** ***

लोग कहते हैं कि आजकल कलियुगके ब्राह्मण अच्छे नहीं हैं। क्या क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अच्छे हैं? पहलेवाले क्षत्रियों आदिके लिये पहलेवाले ब्राह्मण अच्छे थे, आजवाले क्षत्रियों आदिके लिये आजवाले ब्राह्मण अच्छे हैं। अगर पतन हुआ है तो चारों ही वर्णोंका पतन हुआ है। एक ब्राह्मणने कहा कि आप क्षत्रिय हो। रामजीने समुद्रपर पहाड़ तैरा दिये, आप कुण्डीभर पानीमें एक कंकड़ तैरा दो। उस क्षत्रियने कहा कि आप ब्राह्मण हो, अगस्त्यने समुद्र पी लिया, आप कुण्डीका जल पी जाओ! इसलिये किसीको खराब मत समझो। न किसीको बुरा समझो, न बुरा चाहो, न बुरा करो। इससे आपको कोई नुकसान नहीं होगा, कोई बाधा नहीं लगेगी।

*** *** ***

श्रोता—भगवान् हमारा हित चाहते हैं तो हमें दुःखालय संसारमें क्यों भेज दिया?

स्वामीजी—आपकी रुचिसे भेजा! जैसे, आपके पिता पैसे कमाते हैं और पैसोंका सदुपयोग करना चाहते हैं, फिर वे आपके लिये मिट्टी आदिके नकली खिलौने क्यों लाते हैं? कारण यह है कि बालक वैसा ही चाहता है। आप नहीं चाहो तो बिल्कुल नहीं देंगे.....बिल्कुल नहीं देंगे! यह संसार मिट्टीका खिलौना है। आप नहीं चाहो तो यह साक्षात् परमात्माका स्वरूप है। केवल अपनी कामना, वासनासे संसार दीखता है। वास्तवमें संसार नहीं है। यह सब साक्षात् परमात्मा है। भगवान्‌के प्रेमी सन्त-महात्मा कभी संसारमें फँसते ही नहीं। उनकी दृष्टिमें संसार है ही नहीं!

श्रोता—मैं **'शिवोऽहम् शिवोऽहम्'**—इस गुरु-मन्त्रका जप करती हूँ। और भी कुछ करना है या यही ठीक है?

स्वामीजी—आपको **'शिवोऽहम्'** का जप करनेकी जरूरत नहीं है। स्त्रियोंको गुरु बनानेकी जरूरत नहीं है—**'पतिरेव गुरुः स्त्रीणाम्'**। जिनको गुरु बननेकी शौक है, उन्होंने ही इसका प्रचार किया है। अगर बहन पढ़ी हुई हो तो **'क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं'** [गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित] पुस्तक पढ़ो। राम-राम करो तो कल्याण हो जायगा, सीधी-सी बात है! इसका कहीं निषेध नहीं आता। 'ॐ' आदिके उच्चारणमें तरह-तरहके मतभेद हैं, पर राम-नामके उच्चारणमें कोई मतभेद नहीं है।

जाट भजो गूजर भजो भावे भजो अहीर।
तुलसी रघुबर नाम में सब काहू का सीर॥

मैंने देखा है कि जिनका गायत्री-मन्त्रमें अधिकार नहीं है, वे भी गायत्रीका जप इसलिये करते हैं कि इससे हम ऊँचा उठ जायँगे। उनका वास्तवमें पतन होगा। यह कोरा अभिमान है! अभिमानसे ब्राह्मणका भी पतन हो जाता है। पर आज बड़ा होनेके लिये गायत्रीका जप करते हैं। मनमें बड़ा होनेकी इच्छा है, कल्याणकी इच्छा नहीं है। बड़ा होनेकी इच्छासे कल्याण तो होगा ही नहीं, उल्टे पतन होगा! सीधी बात है कि राम-राम करो।

* * * * * * * * *

एक हरदम याद रखनेवाली बात है कि हमारा स्थान वास्तवमें भगवान्‌के पास है; क्योंकि हम भगवान्‌के अंश हैं। **भगवान्‌की प्राप्ति हमारे घरकी प्राप्ति है।** लोगोंने मान रखा है कि हम तो संसारी हैं, भगवान्‌की प्राप्ति कठिन है। वास्तवमें यह बात नहीं है। हम संसारी नहीं हैं, प्रत्युत भगवान्‌के हैं। यह संसार हमारा घर नहीं है। सबको यह धारणा करनी चाहिये कि भगवान्‌की प्राप्ति करना अपने घरकी प्राप्ति करना है। इसमें एक विलक्षण बात है कि **भगवान्‌का घर वहाँ है, जहाँ भगवान् हैं। भगवान् सब जगह हैं! ऐसी कोई जगह खाली नहीं है, जिसमें भगवान् न हों। अतः हम भगवान्‌के घरमें ही बैठे हैं!** जाना-आना तो चौरासी लाख योनियोंका है। हम तो हरदम भगवान्‌के घर बैठे हैं! **जहाँ भगवान् हैं, वहीं हम हैं!** सब जगह परमात्मा परिपूर्ण हैं। अभी आप जहाँ हैं, वहाँ पूर्ण परमात्मा है। इससे एक बात सिद्ध होती है कि कुछ नहीं करना है! कुछ नहीं करनेसे परमात्माकी प्राप्ति होती है। करनेसे संसारकी प्राप्ति होती है। मन, वाणी आदिसे कोई क्रिया नहीं करोगे तो परमात्मामें स्थिति होगी। क्रिया और पदार्थ संसारका स्वरूप है। विश्राम परमात्माका स्वरूप है। गोस्वामीजीने कहा है—***'पायो परम बिश्रामु'*** (मानस, उत्तर० १३० छं०)।

कुछ नहीं करनेमें नींद, आलस्य, प्रमाद नहीं होना चाहिये। आलस्य हो तो नामजप करो, कीर्तन करो। यह 'चुप साधन' है। **कुछ नहीं करना मामूली बात नहीं है, बड़ी भारी बात है!** कर्तृत्व ही संसार है। प्राणायाम, समाधि आदि सब 'करने' में हैं। 'चुप साधन' तभी सिद्ध होता है, जब मनमें कुछ करनेकी, बोलनेकी, सुननेकी, सोचनेकी, समझनेकी इच्छा न रहे। यह इच्छा तबतक रहती है, जबतक करनेका वेग भरा रहता है। कर्मयोग केवल वेग शान्त करनेके लिये है। कोई भी इच्छा न रहे तो परमात्मामें स्थिति स्वतः-स्वाभाविक है।

* * * * * * * * *

परमात्माकी विलक्षणता मैंने बहुत बार कही है, पर पूरी कोई कह सकता ही नहीं! कोई परमात्माकी पूरी शक्ति कह दे, यह असम्भव बात है; क्योंकि वह अनन्त है, अपार है, असीम है। आज दिनतक वेदोंमें, पुराणोंमें, शास्त्रोंमें परमात्माका जो वर्णन हुआ है, वह सब-का-सब इकट्ठा कर दिया जाय, तो वह परमात्माके किसी छोटे अंशका भी वर्णन नहीं हुआ है! **ऐसे अनन्त, अपार, असीम परमात्माकी महिमाको तो हम नहीं कह सकते, पर उनको अपना मान सकते हैं!** यह असली तत्त्वकी बात है। वे अपने हैं और सदा अपने ही रहेंगे। इसमें विलक्षणता यह है कि हम जितने घूमते-फिरते हैं, वे सदा हमारे साथमें रहते हैं! सन्त-महात्मा दूसरोंको अपना क्यों नहीं मानते कि कोई सदा साथ रहता ही नहीं! कोई साथ रहनेवाला है ही नहीं तो क्या करें? भगवान्‌को अपना माननेके लिये मजबूर हो गये! किसको अपना समझें? किससे प्रेम करें? किसके साथ स्नेह करें? किसको अपना साथी बनायें? भगवान्‌का चाहे जो भी रूप मानो, एक वे ही सदा हमारे साथ रहते हैं। चौरासी लाख योनियोंमें जायँ तो भी साथमें, स्वर्गमें जायँ तो भी साथमें, नरकोंमें जायँ तो भी साथमें, मृत्युलोकमें जायँ तो भी साथमें, त्रिलोकीमें हम कहीं भी जायँ, भगवान् हमारे साथमें हैं। वे हमारा साथ छोड़ते ही नहीं। साथ छोड़ना उनको आता ही नहीं! **भगवान् अनन्त विद्याएँ जानते हैं, पर हमारा साथ छोड़ना नहीं जानते! उनमें सब सामर्थ्य है, पर हमें छोड़नेकी सामर्थ्य नहीं है!**

आश्चर्यकी बात है, आप उनको साथी बनाते हो, जिनके लिये रोना पड़े! पहले साथी बनाओ, पीछे रोओ! ऐसा काम करो ही क्यों? ऐसा साथी बनाओ, जिसके लिये कभी रोना पड़े ही नहीं। जो साथ रहनेवाले नहीं हैं, उनकी सेवा करो, उनको सुख पहुँचाओ। नहीं कर सको तो चुपचाप रहो,

उनमें फँसो नहीं। वे नहीं रहेंगे तो रोना पड़ेगा। उनमें मोह नहीं करो तो क्यों रोना पड़े?

*** *** ***

श्रोता—भगवान्‌में प्रेम होना भजनसे बढ़कर है—इसका क्या भाव है?

स्वामीजी—इसका भाव यह है कि जीव भगवान्‌का ही है, दूसरे किसीका है ही नहीं। अतः प्रेम होनेसे वह अपने असली ठिकाने पहुँच जायगा। ज्ञान होनेसे अपने स्वरूपका बोध होता है। स्वरूपका बोध होनेसे अभाव, दुःख मिट जायगा, मुक्ति हो जायगी, पर मिला क्या? पर प्रेमसे भगवान् मिलेंगे!

श्रोता—आप कई बार कहते हैं कि कुछ करना नहीं है, तो 'न करने' का स्वरूप क्या है?

स्वामीजी—जब करनेकी, देखनेकी, सुननेकी, चिन्तन करनेकी मनमें न रहे, इनसे तृप्त हो जाय, तब 'न करना' बहुत जल्दी होता है। 'न करना' हरेकको प्राप्त नहीं होता। न संसारका चिन्तन करना है, न आत्माका चिन्तन करना है, न भगवान्‌का चिन्तन करना है। इसप्रकार 'चुप' होते ही परमात्मामें ही स्थिति होती है। परमात्मा सब जगह परिपूर्ण है। जहाँ आप हो, वहीं परमात्मा है।

श्रोता—मेरा मन भगवान्‌के भजनमें लग रहा है, पर माँ मुझे रोकती है, तो मैं घर छोड़कर चला जाऊँ क्या?

स्वामीजी—माँको मत छोड़ो। भगवान्‌में लगे रहो। आप भी सत्संगमें आओ और माँको भी सत्संगमें लाओ। माँ नहीं आये तो आज्ञा माँगकर सत्संगमें आओ। छोड़नेसे माँको दुःख होगा। संसारमें सबसे ऊँचा दर्जा माँका है। माँको दुःख मत दो।

*** *** ***

पहले यह बात थी कि हम मुसाफिरीमें हैं। आज मेरे मनमें आयी कि **हम मुसाफिरीमें हैं ही नहीं, हम तो अपने घरमें बैठे हैं!** भगवान्‌ने पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार—ये आठ प्रकारकी अपनी अपरा प्रकृति बतायी (गीता ७। ४)। इन आठोंके सिवाय और क्या है? बताओ। अपरा प्रकृति भगवान्‌का स्वरूप है। अतः हम तो घरमें ही बैठे हैं, मुसाफिरी कैसे हुई? अगर घरमें नहीं हैं तो फिर कहाँ हैं आप? बताओ। गलती यह है कि अपरा प्रकृतिको अपना मानते हैं और भगवान्‌को अपना नहीं मानते। **मुसाफिरी तो तब हो, जब भगवान्‌से अलग हों। हम भगवान्‌से अलग होते नहीं, हो सकते ही नहीं! हम भगवान्‌से दूर गये ही नहीं। भगवान्‌की गोदीमें ही बैठे हैं!** अपरा प्रकृतिको अपना मान लिया—इस मान्यताने ही गड़बड़ी की है, और कोई गड़बड़ी नहीं। अपरा प्रकृति केवल सेवाके लिये है। आपके पास जो वस्तु है, वह संसारकी सेवाके लिये ही है।

*** *** ***

गायत्री और ॐ पर सबका अधिकार नहीं है; परन्तु राम-नामपर सबका अधिकार है। जो मानता है कि ॐ के जपसे मैं ऊँचा हो गया, वह वास्तवमें नीचा हो गया। **यह दयालु सन्तोंकी कृपा है कि उन्होंने राम-नामका इतना प्रचार कर दिया कि सबको मालूम हो गया! आज जो राम-नाम सस्ता दीखता है, यह दयालु सन्तोंकी कृपाके कारण है!**

श्रोता—मेरी लड़कीकी अकाल मृत्यु हो गयी और वह मुझे प्रेतरूपमें दीखती है। क्या उपाय है?

स्वामीजी—किसी अच्छे ब्राह्मणसे गयाश्राद्ध कराओ।

*** *** ***

एक विलक्षण बात है! सब भाई-बहन विशेष ध्यान दें। बहुत बढ़िया बात है! सब सावधान होकर सुनें। अगर इस बातको मान लें तो निहाल हो जायँ, इसमें किंचिन्मात्र भी सन्देह नहीं है! यह बात

प्रसिद्ध है कि जीव चौरासी लाख योनियोंमें घूमता है। चौरासी लाख योनियोंमें घूमता हुआ भी जीव किसी शरीरके साथ नहीं रहा तो इस शरीरके साथ कैसे रहेगा? इस शरीरके साथ भी रहेगा नहीं। अत: **वास्तवमें शरीर हमारा नहीं है, हम शरीरके नहीं हैं, हम शरीरमें रहनेवाले नहीं हैं। अगर यह बात ठीक समझ लें तो आप आज ही जीवन्मुक्त हैं!**

हम अशरीरी हैं, शरीरसे बिल्कुल अलग हैं। इसमें अभ्यास काम नहीं करेगा। अभ्यासकी जरूरत नहीं है। अभ्यास नयी स्थिति पैदा करता है, तत्त्वज्ञान पैदा नहीं करता। जब हम चौरासी लाख शरीरोंसे अलग हुए तो इस शरीरसे भी अलग होंगे। विवेकसे केवल इतना ही जानना है कि आप शरीरसे अलग हैं, शरीर आपसे अलग है। यह आप अभी, तत्काल जान लो। **शरीरसे अपनेको अलग अनुभव करना ही जीवन्मुक्ति है, तत्त्वज्ञान है, तत्त्वकी प्राप्ति है!**

श्रोता—सूक्ष्मशरीर और कारणशरीर तो साथ रहते हैं?

स्वामीजी—नहीं। जबतक सूक्ष्मशरीर और कारणशरीर साथ रहते हैं, तबतक जन्म-मरण होता है। इनसे भी अलग हो जाय तो मुक्ति हो जाती है। इनको अपना माना है, तभी साथ रहते हैं। अपना नहीं मानो तो साथ कैसे रहेंगे? आप सूक्ष्मशरीर और कारणशरीरसे अलग हो।

श्रोता—सूक्ष्मशरीर और कारणशरीरको छोड़ना हाथकी बात है क्या?

स्वामीजी—बिल्कुल हाथकी बात है! इसमें किंचिन्मात्र भी सन्देह नहीं है। अगर हाथकी बात न हो तो कोई मुक्त नहीं हो सकता! कैसे मुक्त होगा? यह अभ्याससे नहीं छूटेगा, पर विवेकसे छूट जायगा। इसको आज, अभी छोड़ दो। तत्त्वज्ञानमें समय नहीं लगता। समझमें नहीं आये तो मान लो कि हम तीनों शरीरोंसे अलग हैं, फिर अनुभव हो जायगा। इसमें अभ्यास नहीं है, विवेक है। विवेकसे तत्काल काम होता है। मनुष्यशरीरकी जो महिमा है, वह विवेकको लेकर ही है।

सच्ची बात सच्ची ही रहेगी। दो और दो चार ही होते हैं, तीन या पाँच कैसे हो जायँगे? इसमें अभ्यासकी जरूरत नहीं है, केवल स्वीकार करना है। अभी दीखे या न दीखे, पर बात यही सच्ची है—यह स्वीकार कर लो। अनुभव हो जायगा! सच्ची बात स्वीकार नहीं करोगे तो क्या करोगे?

चौरासी लाख शरीरोंमें सूक्ष्मशरीर और कारणशरीर साथमें रहे, इसलिये जन्म-मरण हुआ। आप सूक्ष्मशरीर भी छोड़ दो और कारणशरीर भी छोड़ दो। ये दोनों प्रकृतिके हैं, आपके नहीं हैं। इनको छोड़ दो तो मुक्ति है। अभी नहीं दीखे तो भी सच्ची बातको स्वीकार कर लो तो वह दीख जायगी। चौरासी लाख योनियोंमें जब स्थूलशरीर साथ नहीं रहा तो सूक्ष्म और कारणशरीर साथ कैसे रहेंगे? जिस प्रकृतिका स्थूलशरीर है, उसी प्रकृतिके सूक्ष्म और कारणशरीर हैं। ये प्रकृतिके अंश हैं, आप परमात्माके अंश हो।

श्रोता—आप विवेककी बात कहते हैं, पर वैराग्यके बिना विवेक दृढ़ नहीं होता!

स्वामीजी—वैराग्य हो जायगा। विवेक पहले है, वैराग्य पीछे है। वैराग्य विवेकसे होता है। विवेककी बात आपको बता दी, आप स्वीकार कर लो तो वैराग्य हो जायगा।

किसीने शरणानन्दजीको पूछा कि आपका परिचय क्या है? उन्होंने कहा कि शरीर सदा मृत्युमें रहता है और मैं सदा अमरतामें रहता हूँ—यह मेरा परिचय है। यही परिचय सबका है।

*** *** ***

श्रोता—मैं नामजपका अभ्यास करता हूँ, पर आप कहते हैं कि अभ्यास नहीं करना चाहिये?

स्वामीजी—अभ्यास नहीं करना चाहिये—यह मैंने कभी कहा ही नहीं! मैंने यह कहा कि अभ्याससे परमात्मप्राप्ति नहीं होती। उसमें कारण यह है कि अभ्यास जड़ताकी सहायताके बिना होता ही नहीं। जड़ताके द्वारा चिन्मयताकी प्राप्ति नहीं होती।

नामजप करना अभ्यास नहीं है, प्रत्युत उपासना है। नामजप अभ्याससे ऊँची चीज है। उपासनामें भगवान्‌के साथ सम्बन्ध जुड़ता है। मैं खुद रोजाना कीर्तन कराता हूँ तो यह अभ्यास नहीं है तो क्या है? अगर मैं अभ्यासका निषेध करता हूँ तो फिर कीर्तन क्यों कराता हूँ? कीर्तनमें भगवान्‌के साथ सम्बन्ध होनेसे यह उपासना है। अभ्यासमें वृत्तियोंका निरोध होता है—'**तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः**' (योगदर्शन १। १३) 'चित्तकी स्थिरताके लिये प्रयत्न करना अभ्यास है'। मुक्ति निष्कामभावसे होती है। अगर निष्कामभाव न हो तो अभ्याससे मुक्ति नहीं होगी।

कीर्तन अभ्याससे ऊँची चीज है। अभ्याससे परमात्माकी प्राप्ति नहीं होती, पर कीर्तनसे परमात्माकी प्राप्ति होती है—'**कलौ तद्धरिकीर्तनात्**' (श्रीमद्भा० १२। ३। ५२)। 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'—यह उपासना है। भगवान्‌के साथ सम्बन्ध जोड़ लो तो वह उपासना हो जायगी। मन लगाना, प्राणायाम करना, त्राटक करना आदि सब अभ्यास है, जिससे विलक्षणता आ जायगी, पर मुक्ति नहीं होगी। **भगवान्‌के साथ सम्बन्ध जोड़ोगे तो मुक्तिसे भी विशेष 'भक्ति' प्राप्त हो जायगी!**

माँ मेरी है, पिता मेरा है, स्त्री मेरी है—इसका अभ्यास करते हो क्या? यह अभ्यास नहीं है, सम्बन्ध है। सम्बन्धमें बिना याद किये याद रहता है। मेरा अमुक नाम है, अमुक जाति है—इसको भूलते हो क्या? मैं ब्राह्मण हूँ, मैं साधु हूँ, मैं गृहस्थ हूँ—इसको भूलते हो क्या? क्या इसका अभ्यास किया है? यह सम्बन्ध है, अभ्यास नहीं। सम्बन्ध तत्काल होता है और मिटानेपर भी मिटता नहीं। **'हे नाथ! हे नाथ!'—यह पुकार है। पुकार उपासनासे भी तेज होती है!** आर्त होकर पुकारे तो तत्काल सिद्धि होती है।

श्रोता—सुबह आपने बताया कि हमारा तीनों शरीरोंसे सम्बन्ध नहीं है। इसका अनुभव कैसे हो?

स्वामीजी—जिसका विवेक तेज होगा, उसको अनुभव होगा। विवेकसे वैराग्य हो जाता है और जड़ताका सम्बन्ध टूट जाता है।

*** *** ***

श्रोता—हम शरीरसे अलग हैं—यह स्वीकार कर लिया, पर जब शरीरका कोई अंग टूटता-फूटता है, तब भयंकर दर्द होता है! ऐसी स्थितिमें क्या करें?

स्वामीजी—दर्द होना और चीज है। एक दर्द होता है, एक दुःख, घबराहट, चिन्ता होती है। दर्द तो शरीरके अंगमें होता है, पर दुःख, घबराहट, चिन्ता हृदयमें होती है। देहाभिमान न रहनेपर शरीरमें पीड़ा तो होगी, पर हृदयकी पीड़ा मिट जायगी अर्थात् दुःख नहीं होगा। देहाभिमानीको जैसा दर्द होता है, वैसा दर्द देहाभिमान न रहनेपर नहीं होता।

श्रोता—शरीरका दर्द भी नहीं हो—ऐसी भी स्थिति हो सकती है क्या?

स्वामीजी—क्लोरोफार्म सूँघ लो!! पर इसमें फायदा नहीं है!

यह नियम है कि जो चीज कम होनेवाली होती है, वह मिटनेवाली होती है। जो मिटनेवाली नहीं होती, वह कम भी नहीं होती। दर्द कम होता है तो इससे सिद्ध होता है कि वह मिटनेवाला है। सत्संग करनेवाले और सत्संग न करनेवाले—दोनोंमें प्रत्यक्ष फर्क दीखता है। सत्संग करनेवालोंका अनुभव है कि पहले जितनी चिन्ता होती थी, उतनी अब नहीं होती।

* * * * * * * * *

श्रोता—जैसे पहले वर्णमाला सीखते हैं तो पहले धीरे-धीरे समझमें आता है, फिर पीछे ठीकसे पढ़ लेते हैं, ऐसे ही 'मैं शरीर नहीं हूँ, शरीर मेरा नहीं है'—यह बात पीछे अनुभवमें आयेगी या तत्काल अनुभवमें आ सकती है?

स्वामीजी—तत्काल भी अनुभवमें आ सकती है और धीरे-धीरे भी आ सकती है, दोनों बातें हैं। जिसके भीतर तीव्र जिज्ञासा है, जिसको तत्त्वज्ञानके बिना चैन नहीं पड़ता, रोटी नहीं भाती, पानी नहीं भाता, नींद नहीं आती, उसको तत्काल अनुभव हो जायगा। परन्तु जो आरामसे रहता है और साधन करता है, उसको देरी लगेगी।

श्रोता—'मैं शरीर हूँ, शरीर मेरा है'—यह देहाभिमान सुगमतासे कैसे छूटे?

स्वामीजी—पहले यह समझो कि देह क्या है?

छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा॥
प्रगट सो तनु तव आगें सोवा। जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा॥

(मानस, किष्किन्धा० ११। २-३)

'(श्रीरामजीने तारासे कहा—) पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु—इन पाँच तत्त्वोंसे यह अत्यन्त अधम शरीर रचा गया है। वह शरीर तो प्रत्यक्ष तुम्हारे सामने सोया हुआ है, और जीव नित्य है। फिर तुम किसके लिये रो रही हो?'

जितने शरीर हैं, जितने अनन्त, करोड़ों ब्रह्माण्ड हैं, सब-के-सब पांचभौतिक हैं। किसीमें पृथ्वी-तत्त्वकी प्रधानता है, किसीमें जल-तत्त्वकी प्रधानता है, किसीमें अग्नि-तत्त्वकी प्रधानता है और किसीमें वायु-तत्त्वकी प्रधानता है। देवताओंके शरीरमें अग्नि-तत्त्वकी प्रधानता है, भूत-प्रेतके शरीरमें वायु-तत्त्वकी प्रधानता है, मनुष्यशरीरमें पृथ्वी-तत्त्वकी प्रधानता है, पर वे सब हैं पांचभौतिक। अनन्त सृष्टियोंमें आपकी चीज रत्तीभर भी नहीं है, तिल-जितनी भी नहीं है, केश-जितनी भी नहीं है! कारण कि वे सब पांचभौतिक (जड़) हैं और आप परमात्माके अंश (चेतन) हैं! आप परमात्माके अंश होकर भौतिक शरीरको अपना मानते हो, जो सर्वथा असम्भव है! इसलिये यह मान लो कि जो भौतिक चीज है, वह अपनी नहीं है और हम उसके नहीं हैं। पांचभौतिकको सभीने नीचा माना है।

भगवान्‌को पुकारना बहुत बढ़िया साधन है। देहाध्यास न छूटे तो भक्तिमें लग जाओ, भगवान्‌से प्रार्थना करो। ज्ञानके मार्गमें देहाध्यास छोड़ना ही पड़ेगा। देहाभ्यास छोड़े बिना ज्ञानका मार्ग नहीं चल सकता, नहीं चल सकता, नहीं चल सकता! परन्तु भगवान्‌की भक्ति देहाध्याससे नहीं अटकती। 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारो। भगवान् ज्ञानयोग और कर्मयोग दोनों दे देंगे—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥
तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥

(गीता १०। १०-११)

'उन नित्य-निरन्तर मुझमें लगे हुए और प्रेमपूर्वक मेरा भजन करनेवाले भक्तोंको मैं वह बुद्धियोग देता हूँ, जिससे उनको मेरी प्राप्ति हो जाती है।'

'उन भक्तोंपर कृपा करनेके लिये ही उनके स्वरूप (होनेपन)-में रहनेवाला मैं उनके अज्ञानजन्य

अन्धकारको देदीप्यमान ज्ञानरूप दीपकके द्वारा नष्ट कर देता हूँ।'

*** *** ***

आचार्योंने दो तरहका क्रम माना है। पहले कर्मयोग, फिर भक्तियोग, फिर ज्ञानयोग—यह शंकराचार्यका मत है। पहले कर्मयोग, फिर ज्ञानयोग, फिर भक्तियोग—यह रामानुजाचार्यका मत है। मैं भी इसी बातको कहता हूँ। परन्तु मैं रामानुजाचार्यका मत मानता हूँ, ऐसा नहीं है। मैंने पढ़ाई शांकरमतकी की है। मेरा अध्ययन भी शांकरमतका है। परन्तु गीताको, पुराणोंको देखनेसे रामानुजका मत बढ़िया लगता है। यह मैं अपनी बात कहता हूँ, आपके ऊपर लादता नहीं हूँ कि आप भी ऐसा मानें। मेरा आग्रह नहीं है। आपको जैसा जँचे, वैसा मानो। मेरेमें भी पहले ज्ञानकी मुख्यता थी; क्योंकि वही पढ़ाई की थी। परन्तु गीताका पाठ करनेसे 'मथानिया' में यह बात आयी कि भक्ति बहुत विलक्षण है। उसके बाद मेरा मत बदला है। यह मैंने व्यक्तिगत बात कही है। मैं किसी आचार्यके मतको गलत नहीं कहता। सभी मत श्रेष्ठ हैं। सभी आचार्य बड़े दयालु हुए हैं। उनको जैसा समझमें आया, वैसा लिखा है, और वैसा करनेसे तत्त्वज्ञान होता है, ऐसा मैं मानता हूँ। मेरी आचार्योंपर श्रद्धा, पूज्यभाव है। मैं किसीका खण्डन नहीं करता हूँ। कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग—तीनों विषयोंमें मेरा अध्ययन है।

ऊँची-से-ऊँची भक्ति है! गीताभरमें '**सर्वगुह्यतमम्**' पद एक ही बार आया है (गीता १८। ६४)। इसमें भगवान्‌ने भक्तिको सबसे अत्यन्त गोपनीय बताया है। इसका ज्ञानपरक अर्थ भी मैंने पढ़ा है। परन्तु मुझे भक्तिका मार्ग सबसे ठीक दीखता है। कर्मयोग और ज्ञानयोगसे मुक्ति होती है, पर उनमें अत्यन्त सूक्ष्म एक अहंकार रहता है। यह सूक्ष्म अहंकार मुक्तिमें बाधक नहीं होता, पर मतभेद करनेवाला होता है। परन्तु प्रेमभक्तिमें वह सूक्ष्म अहंकार भी नहीं रहता—

प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभिअंतर मल कबहुँ न जाई॥

(मानस, उत्तर० ४९। ३)

प्रेमभक्तिमें मतभेद नहीं रहता। इसलिये प्रेमभक्ति सबसे उत्तम मानी गयी है। आजकल ज्ञानमार्गको मुख्य माना जाता है, ज्ञानका प्रचार विशेष है, पर बोधवान् आदमी मेरेको दीखता नहीं! जिसको तत्त्वज्ञान हो गया हो, ऐसा ज्ञानमार्गसे सिद्ध हुआ पुरुष मेरे देखनेमें आया नहीं! मुक्त होनेके बाद भी राग-द्वेष, काम-क्रोध रहते हैं—ऐसा वेदान्तकी पुस्तकों (पंचदशीमें)-में आता है! परन्तु जिसके भीतर राग-द्वेष, काम-क्रोध होते हैं, वह मुक्त कैसे हुआ? राग-द्वेष तभीतक रहते हैं, जबतक शरीरमें अध्यास है। शरीरमें मैंपन नहीं होगा तो राग-द्वेष कैसे रहेंगे? पंचदशीमें यहाँतक आया है कि बोध होनेपर भी वासनाक्षय और मनोनाश नहीं होता। परन्तु यह बात मेरेको जँचती नहीं! बोध होनेपर वासनाक्षय भी हो जायगा, मनोनाश भी हो जायगा।

*** *** ***

श्रोता—प्रणामकी महिमा क्या है?

स्वामीजी—प्रणामकी महिमा इतनी है कि परमात्माकी प्राप्ति हो जाय!

एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय॥

(महाभारत, शान्ति० ४७। ९२)

'भगवान् श्रीकृष्णको एक बार भी प्रणाम किया जाय तो वह दस अश्वमेध यज्ञोंके अन्तमें किये गये स्नानके समान फल देनेवाला होता है। इसके सिवाय प्रणाममें एक विशेषता है कि दस अश्वमेध

करनेवालेका तो पुनः संसारमें जन्म होता है, पर श्रीकृष्णको प्रणाम करनेवाला अर्थात् उनकी शरणमें जानेवाला फिर संसार-बन्धनमें नहीं आता।'

श्रोता—क्या लड़कीको माँ-बापके पैर छूकर प्रणाम करना चाहिये?

स्वामीजी—जहाँतक बने, पिताको कन्यासे पैर छुआकर प्रणाम नहीं कराना चाहिये। अपनी कन्याको भगवती देवीका स्वरूप समझना चाहिये।

*** *** ***

देहाभिमानको मिटानेके लिये भगवद्गीतामें कहा है—

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥

(गीता २। १३)

'देहधारीके इस मनुष्यशरीरमें जैसे बालकपन, जवानी और वृद्धावस्था होती है, ऐसे ही दूसरे शरीरकी प्राप्ति होती है। उस विषयमें धीर मनुष्य मोहित नहीं होता।'

बाल्यावस्थासे युवावस्था आती है और युवावस्थासे वृद्धावस्था आती है तो क्या कोई चिन्ता करता है? इसी तरह वृद्धावस्थाके बाद दूसरे शरीरमें बाल्यावस्था आ जाती है। अतः जैसे जवान होनेपर 'मैं बालक हूँ'—इस तरह बालकपनेका अभिमान छूट जाता है, और बूढ़ा होनेपर 'मैं बालक हूँ अथवा मैं जवान हूँ'—यह अभिमान छूट जाता है, ऐसे ही देहाभिमान छूट जाना चाहिये। तात्पर्य यह हुआ कि बालक, जवान अथवा वृद्ध होनेपर जीवात्मा एक ही रहा। जैसे अवस्था बदलती है, ऐसे ही शरीर बदल जाता है। जैसे अवस्थाओंके बदलनेपर जीवात्मा वही रहता है, ऐसे ही शरीरोंके बदलनेपर भी जीवात्मा वही रहता है। इसलिये एक शरीरमें आग्रह नहीं रहना चाहिये; क्योंकि कितना ही आग्रह रखो, शरीर तो छूटेगा ही। अगर मनुष्य जीता रहे तो उसका बालकपन छूटेगा और जवानी आयेगी, जवानी छूटेगी और बुढ़ापा आयेगा। इसी तरह बुढ़ापा छूटेगा और अगले जन्ममें बालकपना आयेगा। इसलिये एक शरीरमें अपनी स्थिति नहीं माननी चाहिये; क्योंकि एक शरीरमें स्थिति रहेगी नहीं। गीताने कपड़ेका दृष्टान्त दिया है—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

(गीता २। २२)

'मनुष्य जैसे पुराने कपड़ोंको छोड़कर दूसरे नये कपड़े धारण कर लेता है, ऐसे ही देही पुराने शरीरोंको छोड़कर दूसरे नये शरीरोंमें चला जाता है।'

दूसरे कपड़े पहननेपर आप दूसरे थोड़े ही हो जाते हो। आपको कोई बालक कह दे तो आप खुद कहते हो कि 'मैं कोई बच्चा थोड़े ही हूँ'! इसलिये शरीरका अभिमान छोड़ देना चाहिये। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, ईर्ष्या, द्वेष, पाखण्ड आदि सभी विकार देहाभिमानसे ही पैदा होते हैं—'**देहाभिमानिनि सर्वे दोषाः प्रादुर्भवन्ति**'। देहाभिमान मिट जाय तो सभी विकार मिट जाते हैं। इसलिये देहाभिमानका त्याग करना सब भाई-बहनोंका खास काम है। कारण कि यह शरीर तो रहेगा नहीं, पक्की बात है। जो नहीं रहेगा, उसका अभिमान छोड़नेमें क्या बाधा है?

साधक विदेह, देहरहित ही होता है। देह छूटनेपर भी साधन नहीं छूटता, प्रत्युत योगभ्रष्ट होकर

पुनः साधनमें लग जाता है (गीता ६। ४१-४४)। इसलिये **अपने-आपको साधक मानो, शरीरको साधक मत मानो।** आप स्वयं साधक हैं, शरीर साधक नहीं है। साधक स्वयं देहरहित, अवयवरहित, आकाररहित, निराकार रहता है। इसलिये साधकमें शरीरका मोह नहीं रहना चाहिये। शरीरका मोह रहेगा तो काम, क्रोध, लोभ आदि भी रहेंगे। **साधन तभी होगा, जब आप अपनेको निराकार मानेंगे। शरीरको अपना मानते हुए साधन ठीक नहीं बनता।** शरीर मैं नहीं है, शरीर मेरा नहीं है और शरीर मेरे लिये नहीं है। यह केवल संसारकी सेवाके लिये ही है।

देह तो मकानकी तरह है। जैसे आप मकानमें रहते हुए भी मकानसे अलग हैं, ऐसे ही देहमें रहते हुए आप देहसे अलग हैं। इतने दिन विचार नहीं किया, अब आप विचार करो तो बात समझमें आ जायगी। पहले बात अटपटी लगती है, फिर धीरे-धीरे ठीक हो जाता है, साफ दीखने लगता है कि देह अलग है, हम अलग हैं।

*** *** ***

कोई बालकसे जवान हो जाय तो रोते नहीं कि बालक मर गया! अब वह पुनः बालक नहीं होगा। ऐसे ही कोई जवानसे बूढ़ा हो जाय तो जवानी मर गयी! ये अवस्थाएँ तो सदा ही बदलती हैं। जब अवस्था बदलनेपर कोई रोता नहीं, फिर मरनेपर क्या रोना? बदलना तो संसारका स्वरूप है। शरीर वही नहीं रहता, पर आप वही रहते हो। शरीर निरन्तर ही बदलता है और आप निरन्तर ही रहते हो। दोनों एक साथ कभी रह सकते ही नहीं! इस बातको स्वीकार कर लो तो आप जीवन्मुक्त हो जाओगे, निहाल हो जाओगे!

शरीर आदि सब-के-सब जड़ पदार्थ संसारकी सेवाके लिये हैं। सेवा करो चाहे नहीं करो, वे तो रहेंगे नहीं। न धन रहेगा, न घर रहेगा, न कुटुम्ब रहेगा, न प्रेमी रहेंगे। सच्ची बात है! अतः इनको अपना नहीं मानना है—इतना ही तो काम है! सच्ची बात माननेमें क्या बाधा है? समझमें नहीं आये तो भी सच्ची बात मान लो, फिर साफ वैसा ही दीखने लग जायगा। निहाल हो जाओगे! मौज हो जायगी!

अब मेरा विचार व्याख्यान देनेका नहीं है। अब यही विचार आया है कि साधन बताना है, और वही बता रहा हूँ। ऐसी बात आपको हर जगह मिलती है क्या? हमारेको तो मिली नहीं! एक आदमीने कहा कि यह तो आपकी कृपासे होगा तो मैंने कहा कि ठीक है, हमारी कृपासे हो जायगा! दो और दो चार ही होते हैं, इसमें कृपाका क्या लेना-देना? जितनी आपकी तेज इच्छा (लगन) होगी, उतना जल्दी अनुभव होगा। जितनी बेपरवाह होगी, उतनी देरी लगेगी।

*** *** ***

आप सब-के-सब शरीरसे बिल्कुल अलग हैं। मरनेपर शरीरसे अलग होते हैं तो वास्तवमें पहलेसे अलग हैं, तभी अलग होते हैं। अगर पहलेसे अलग नहीं हों तो कैसे अलग होंगे? शरीरसे अलग करनेके लिये क्या उपदेश मिलता है? कोई मरता है तो क्या उपदेशसे मरता है? क्या उपदेशके बिना वह मरता नहीं? मरनेके लिये क्या उपदेश देना पड़ता है? आप स्वतः-स्वाभाविक शरीरसे अलग हैं। इसलिये यह बात पहले ही स्वीकार कर लेनी चाहिये कि हम शरीरसे अलग तो हैं ही, अब अलग अनुभव करना है। इतनी-सी बात है!

आप ध्यान देकर सच्ची बात सुनो—***'ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥'*** (मानस, उत्तर० ११७। १)। आपको ***'सहज सुख रासी'*** बताया है; परन्तु 'सुखराशि' तो दूर रहा, आपको

दु:ख-ही-दु:ख होता है! कारण क्या है? कि शरीरके साथ एकता मानी है। नहीं तो दु:ख आये कहाँसे? शरीरको अपना माना है, इसलिये दु:ख होता है।

कोई मरना नहीं चाहता, फिर भी सब-के-सब मरते हैं। बिना चाहे क्यों मरते हो? शरीरके साथ एकता मानी है, इसलिये मरते हो। शरीरके साथ एकता नहीं मानो तो मरोगे ही नहीं, प्रत्युत अमर हो जाओगे। वास्तवमें आप स्वत:-स्वाभाविक अमर हो। मरता शरीर है, आप नहीं। शुकदेवजीने कहा है—

त्वं तु राजन् मरिष्येति पशुबुद्धिमिमां जहि।
न जातः प्रागभूतोऽद्य देहवत्त्वं न नङ्क्ष्यसि॥

(श्रीमद्भा० १२। ५। २)

'हे राजन्! अब तुम यह पशुबुद्धि छोड़ दो कि मैं मर जाऊँगा। जैसे शरीर पहले नहीं था, पीछे पैदा हुआ और फिर मर जायगा, ऐसे तुम पहले नहीं थे, पीछे पैदा हुए और फिर मर जाओगे—यह बात नहीं है।'

'मैं शरीर हूँ'—यह पशुबुद्धि है। मनुष्यबुद्धि तो अपनेको शरीरसे अलग अनुभव करना है। मैं आपको पशुबुद्धि छोड़नेके लिये ही कहता हूँ। **सत्संग अर्थात् सत्का संग तभी होगा, जब शरीरको अपना नहीं मानोगे।** शरीरको अपना मानना असत्का संग है। **आप असत्का संग करते हो और कहते हो कि हम सत्संग करते हैं! शरीरको अपना मानना सत्संग नहीं है, प्रत्युत कुसंग है!** आपके पास अरबों-खरबों रुपये हो जायँ तो भी आप शान्ति नहीं पा सकते, पर शरीरसे अलग हो जाओ तो एक कौड़ी लगेगी नहीं, पर आनन्द हो जायगा! ***'हींग लगे ना फिटकरी, रंग झकाझक आये'!***

*** *** ***

श्रोता—मैं चार दिनसे यहाँ आया हुआ हूँ। मुझे आपके प्रवचनोंसे बड़ा लाभ मिला है। परन्तु मुझे नौकरीके कारणसे जाना पड़ रहा है! मुझे आपका अभाव बहुत खटकता है! मुझे क्या करना चाहिये?

स्वामीजी—'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' ऐसे भगवान्को पुकारो। यह बहुत बढ़िया साधन है। जैसे बच्चा अपनी माँको पुकारता है, ऐसे हरदम भगवान्को पुकारते रहो। 'माँ' नाम तो सबका है, पर बच्चा मेरी (अपनी) माँको पुकारता है, ऐसे 'हे मेरे नाथ! हे मेरे नाथ!' पुकारो। सब काम ठीक हो जायगा! **यह पुकार महामन्त्र है, और सब साधनोंसे तेज है!**

श्रोता—स्वर्ग-नरक यहींपर हैं या और भी स्वर्ग-नरक हैं?

स्वामीजी—स्वर्ग-नरक यहाँ भी हैं और दूसरी जगह भी हैं, दोनों बातें हैं। दूसरी जगह जो स्वर्ग हैं, उनमें यहाँसे ज्यादा सुख है और जो नरक हैं, उनमें यहाँसे ज्यादा दु:ख है! अनेक प्रकारके नरकोंमें तरह-तरहकी बहुत भयंकर यातनाएँ दी जाती हैं।

*** *** ***

आपका स्वरूप है—सत्ता अर्थात् होनापन, जिसको 'है' भी कहते हैं। वह सत्ता सब जगह है। उसको शरीरमें आपने माना है। आपका स्वरूप असंग है—'**असङ्गो ह्ययं पुरुषः**' (बृहदारण्यक० ४। ३। १५)। संग आपने किया है। इस बातको शास्त्रमें दो तरहसे बताया है—ईश्वरकृत सृष्टि और जीवकृत सृष्टि। ईश्वरकृत सृष्टि बाधक नहीं है, किसीको बाँधती नहीं है। ईश्वरकृत सृष्टिमें मैं-मेरापनका सम्बन्ध करना जीवकृत सृष्टि है, जिससे जीव बँधता है। कई लोग कहते हैं कि भगवान्ने हमारेको दु:ख दे

दिया। परन्तु भगवान्‌के खजानेमें दुःख है ही नहीं, फिर तुम्हारेको दुःख कहाँसे दे दिया? दुःख आपका ही माना हुआ है। आपने ही मनचाही होनेपर सुख मान लिया और मनचाही न होनेपर दुःख मान लिया।

हम ईश्वरके अंश हैं—यह सदा याद रखो। हमारे असली माँ-बाप ईश्वर हैं। आपका सम्बन्ध, अपनापन ईश्वरके साथ है। आप ईश्वरके हैं, ईश्वर आपका है। आप संसारमात्रसे बिल्कुल निर्लेप हैं। शरीर तो ईश्वरकृत है, पर उससे अपना सम्बन्ध जोड़ना जीवकृत है। यह जीवकृत सम्बन्ध ही बाँधनेवाला है। अगर आप सम्बन्ध न जोड़ें तो कभी बन्धन होगा ही नहीं। आपका सम्बन्ध केवल ईश्वरके साथ है। आप जानें तो है, न जानें तो है, मानें तो है, न मानें तो है, आप स्वीकार करें तो है, स्वीकार न करें तो है, ईश्वरका सम्बन्ध सदा है।

आप विचार करें कि सदा आपके साथ रहनेवाला कौन है? क्या माँ साथ रहेगी? क्या पिता साथ रहेंगे? क्या भाई साथ रहेंगे? क्या स्त्री साथ रहेगी? क्या बेटा साथ रहेगा? रह सकते ही नहीं। रहनेकी ताकत ही नहीं है! अतः ये अपने नहीं हैं, हम इनके नहीं हैं। इसलिये मीराबाईने सच्ची बात कह दी—***'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई'***। परदेमें रहनेवाली मीराबाई अकेली वृन्दावन और द्वारका चली गयी! कोई भय नहीं लगा! शरीर मेरा नहीं है और भगवान् मेरे हैं—ये दो ही बातें हैं। दूसरोंकी सेवा कर दो। सेवा करनेका मौका केवल मनुष्यशरीरमें ही मिलता है। आपके पास जो सामग्री है, वह सुख भोगनेके लिये नहीं है, प्रत्युत सेवा करनेके लिये है।

*** *** ***

मैं अभ्यास करनेका निषेध नहीं करता, पर अभ्याससे तत्त्वकी प्राप्ति हो जायगी, तत्त्वज्ञान हो जायगा—यह नहीं मानता; क्योंकि अभ्यास करोगे तो जड़ताकी सहायता लेनी ही पड़ेगी। जड़ताके द्वारा चिन्मयताकी प्राप्ति कैसे होगी? जड़ताके त्यागसे चिन्मयताकी प्राप्ति होगी। जड़ताका सर्वथा त्याग कर दिया जाय तो चेतनके सिवाय क्या रहेगा?

संसारकी प्राप्तिमें क्रिया और पदार्थकी प्रधानता है। परमात्माकी प्राप्तिमें शरणागति और निष्क्रियताकी प्रधानता है। जो सब जगह परिपूर्ण है, उसको क्रियासे कैसे प्राप्त करोगे, बताओ? आप जहाँ हैं, वहाँ पूर्ण परमात्मा हैं। क्रियासे प्राप्ति उसकी होती है, जो देश, काल, वस्तु आदिसे दूर हो। परन्तु मैं आपलोगोंको क्रियाका त्याग करनेके लिये नहीं कहता; क्योंकि आपके भीतर 'करने' का भाव, संस्कार रहता है। 'करने' का भाव रहनेसे कुछ नहीं करो तो भी करना है और करो तो भी करना है!

अगर साधक यह बात भी स्वीकार कर ले कि जो मिलता है और बिछुड़ता है, वह अपना नहीं है, तो उसको तत्त्वज्ञान हो जायगा, मुक्ति हो जायगी, कल्याण हो जायगा! अपने परमात्मा हैं, जो सदासे मिले हुए हैं और कभी बिछुड़ेंगे नहीं। इसलिये उनकी प्राप्तिके लिये क्रिया करना मुख्य नहीं है। हम परमात्माको अपनेसे दूर मानते हैं—इस मान्यताको हटानेके लिये क्रिया है।

श्रोता—जब क्रियासे परमात्माकी प्राप्ति नहीं होती, तो फिर आप क्रिया छोड़नेके लिये मना क्यों करते हैं?

स्वामीजी—मनुष्य कुछ करेगा ही नहीं तो आलस्यमें, प्रमादमें, नींदमें समय खराब करेगा! इसलिये क्रिया छोड़नेके लिये मना करता हूँ। सांसारिक भोगोंकी रुचि, रुपयोंकी चाहना, संसारका आश्रय दूर करनेके लिये अभ्यास करो।

मुख्य दो ही बात है—प्राप्तकी ही प्राप्ति करनी है और अप्राप्तका ही त्याग करना है। **संसार अप्राप्त**

है; क्योंकि संसार अभीतक कभी किसीको मिला नहीं! वस्तुके मिलनेकी पहचान यह है कि मिलनेके बाद फिर मिलनेकी इच्छा मिट जाती है, आदमी तृप्त हो जाता है। फिर मिलना कुछ बाकी नहीं रहता। जैसे, बालक रोता है, पर जब माँ मिल जाती है, तब वह माँके साथ चिपट जाता है, उसका रोना मिट जाता है।

मनुष्यजन्म केवल परमात्माकी प्राप्तिके लिये मिला है। केवल आपकी इच्छा चाहिये। इच्छा जोरदार हो जायगी, दूसरी कोई इच्छा नहीं रहेगी तो परमात्मप्राप्ति हो जायगी। दूसरी इच्छाओंको मिटानेका अभ्यास करो। मनमें किंचिन्मात्र भी कोई चाहना न रहे। जीनेकी भी चाहना रहेगी तो परमात्माकी प्राप्ति नहीं होगी। एक मार्मिक बात है कि चाहनामात्रसे परमात्मा मिलते हैं, पर चाहनामात्रसे सांसारिक चीज नहीं मिलती। सांसारिक वस्तुकी प्राप्तिमें तो प्रारब्ध है, पर परमात्माकी प्राप्तिमें प्रारब्ध है ही नहीं।

एक बात आपलोग ध्यान देकर सुनो। अभी हम मान लें कि जो कुछ दीख रहा है, वह साक्षात् परमात्मा है तो अभी प्राप्ति हो जायगी! मनमें किंचिन्मात्र भी सन्देह नहीं हो। प्यास लगती है तो जलरूपसे भगवान् आते हैं, भूख लगती है तो अन्नरूपसे भगवान् आते हैं, जाड़ा लगता है तो कपड़ारूपसे भगवान् आते हैं। आप जिस चीजकी आवश्यकता समझते हो, उसका रूप धारण करके भगवान् आते हैं। कुछ भी इच्छा नहीं करो तो साक्षात् भगवान् आते हैं! क्योंकि है ही वही, और कोई है ही नहीं!

सब जग ईस्वररूप है, भलो बुरो नहिं कोय।
जाकी जैसी भावना, तैसो ही फल होय॥

*** *** ***

श्रोता—सब कुछ परमात्मा ही हैं—यह बात समझमें नहीं आयी!

स्वामीजी—समझमें आये या न आये, सब कुछ परमात्मा ही हैं। वास्तवमें यह बात समझके अन्तर्गत नहीं है, प्रत्युत समझ इसके अन्तर्गत है। इसका अनुभव करनेवाले महात्माको भगवान्‌ने अत्यन्त दुर्लभ बताया है—'**वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः**' (गीता ७। १९)। परन्तु भगवान्‌ने अपनेको सुलभ बताया है—'**तस्याहं सुलभः पार्थ**' (गीता ८। १४)। भगवान् सुलभ हैं, पर महात्मा दुर्लभ है!

समझमें न आये तो भी मान लो कि वास्तवमें है ऐसा ही। कभी भी यह बात नहीं होनी चाहिये कि यह हमारी कल्पना है, हमारी भावना है, हमारा विचार है, हमारी स्वीकृति है। हमारी स्वीकृति हो चाहे न हो, हम समझें चाहे न समझें, हमारी स्थिति हो चाहे न हो, बात तो ऐसी ही है! बात यही सच्ची है! फिर भगवान्‌की कृपासे स्वतः अनुभव हो जायगा।

भगवान्‌की कृपा स्वतः-स्वाभाविक होती है। आश्चर्य आयेगा! मैं तो कोई पात्र भी नहीं, मैंने प्रार्थना भी नहीं की, माँग भी नहीं की, कुछ भी नहीं किया, आँख खुल गयी! मेरेको कइयोंने पूछा, मैंने कहा कि मैं बता नहीं सकता कि कृपा कैसे हो? कृपा होती है—यह एकदम पक्की, सच्ची बात है। कृपाके विषयमें मैं कई बातें कहता हूँ, पर वास्तवमें भगवान् जानें! अपने-आप, जबर्दस्ती कृपा होती है! भगवान्‌का स्वभाव है। वर्षा काँटोंके वृक्षोंपर भी बरसती है और समुद्रपर भी बरसती है। मैंने समुद्रमें वर्षा बरसते हुए देखी है। इस तरह भगवान्‌की कृपा विचित्र है! 'हे नाथ! हे नाथ!' करते रहो। खट हो जायगा! मोटरको चालू करते हैं तो बीस बार चाबी घुमाते हैं और इक्कीसवीं बार चाबी घुमाते ही खट मोटर चालू हो जाती है! कितनी बार चाबी घुमानेसे मोटर चालू होगी, इसका पता नहीं। आप चाबी घुमाते जाओ, मोटर चलेगी जरूर! मोटर खराब होनेपर नहीं भी चले, पर यह (पुकार) कभी खराब नहीं होती! *'रामजी से लगे रहो भाई, तेरी बिगड़ी बात बन जाई।'*

श्रोता—आप कहते हैं कि किसीको बुरा न समझें, यह बात समझमें नहीं आयी; क्योंकि किसीको बुराई करते हुए देखते हैं तो हमारे मनमें उसके प्रति बुरा भाव आ जाता है!

स्वामीजी—वह बुरा नहीं है, भगवान् कलियुगकी लीला कर रहे हैं। आप बताओ, भगवान् कलियुगकी लीला कैसे करें?

श्रोता—अन्यायका प्रतिकार करना चाहिये या नहीं?

स्वामीजी—अन्यायका प्रतिकार अवश्य करना चाहिये। परन्तु अन्यायका प्रतिकार करते हुए भी भीतरमें दूसरेके हितका भाव पक्का रहना चाहिये। अन्याय आगन्तुक चीज है, मूलमें नहीं है।

श्रोता—हमने अपनी ओरसे किसीको कष्ट नहीं दिया, पर दूसरेको दुःख हो गया तो हमें क्या करना चाहिये?

स्वामीजी—हाथ जोड़कर माफी माँग लो। अपना कोई कसूर न हो तो भी माफी माँगनेमें कोई हर्ज नहीं। इससे आपकी बड़ी शुद्धि होगी, निर्मलता होगी। इसमें संकोच नहीं करना।

*** *** ***

खास बात है कि संसारमें हमारा कुछ भी नहीं है.....कुछ भी नहीं है.....कुछ भी नहीं है! परन्तु लोग सांसारिक वस्तुओं-व्यक्तियोंमें अपनापन छोड़ते नहीं, छोड़ना चाहते भी नहीं! भीतरसे असली चाहना बहुत कम आदमियोंकी है! सुनना एक व्यापार-सा समझ रखा है। इतना भी अच्छा है! कुछ न करनेकी अपेक्षा कुछ करना अच्छा है—'**अकरणात् मन्दकरणं श्रेयः**'। भीतरसे छूटनेकी परवाह ही नहीं है! परवाह हो तो भगवान्‌को पुकारो 'हे नाथ! हे मेरे नाथ! हे मेरे प्रभो! हे मेरे स्वामिन्!' भगवान्‌की कृपासे ही ठीक होगा। हम तो इतना भी अच्छा समझते हैं, बहुत बड़ी बात समझते हैं कि आप सत्संगमें आकर बैठ गये! सज्जनो! समय बीत जायगा, काम बनेगा नहीं! सावधान हो जाओ। अपने भीतर लगन लगाओ और इसके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करो कि 'हे नाथ! हे मेरे स्वामिन्! आपमें सच्चे हृदयसे लग जायँ'।

मेरी प्रार्थना है कि आप हृदयसे भगवान्‌से प्रार्थना करो—

'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं। मैं आपसे सुख नहीं चाहता। एक ही बात चाहता हूँ कि भीतरमें ऐसी लगन हो जाय, ऐसी चाहना हो जाय, ऐसी व्याकुलता हो जाय कि मैं आपके बिना रह न सकूँ। हे नाथ! ऐसी कृपा करो कि आपको कभी भूलूँ नहीं। आपने बहुत कृपा की है, फिर भी मैं समझता नहीं!'

'हे नाथ! मेरी सांसारिक सुखकी, सांसारिक चीजोंकी चाहना भी हो जाय तो उसको आप पूरी मत करो। जिससे मेरा केवल आपके ही चिन्तनमें मन लग जाय, ऐसी कृपा करो। मैंने बहुत दुःख पा लिया, फिर भी चेत नहीं हो रहा है, होश नहीं आ रहा है, आपसे प्रार्थना करनेकी जोरदार मनमें नहीं आ रही है! मैं हैरान हो गया हूँ! अब ऐसी कृपा करो कि आपको भूलूँ नहीं! आपके सिवाय मेरी और कौन सुनेगा? किससे कहूँ? कोई सुननेवाला नहीं! मेरेपर कृपा करनेवाला कोई दीखता नहीं! आप कृपा करो। ऐसी कृपा करो कि मैं आपको भूलूँ नहीं। आपने बहुत कृपा की है, पर मेरेको चेत नहीं हो रहा है। आप चेत कराओ। मैं माँग भी नहीं सकता; क्योंकि माँगनेकी भीतरमें जोरदार इच्छा ही नहीं होती! मैं हैरान हो गया हूँ! कहाँ जाऊँ? किससे कहूँ? कौन सुने? सिवाय आपके कोई सुननेवाला नहीं है!'

'मेरी दशा ऐसी हो रही है कि हृदयमें प्रेम नहीं है, स्नेह नहीं है, आपकी तरफ आकर्षण नहीं

है! मेरा संसारके भोगोंमें आकर्षण होता है! जो चीजें पतन करनेवाली हैं, उन चीजोंमें अच्छापन दीखता है! क्या करूँ? सिवाय आपके कोई कुछ नहीं कर सकता। हे नाथ, आप कृपा करो.....कृपा करो.....कृपा करो! आपने बहुत कृपा की है, पर मेरेको होश नहीं हो रहा है! हे नाथ! हे कृपासिन्धो! आपकी तरफ जैसी लगन होनी चाहिये, वैसी नहीं हो रही है! मैं आपकी दृष्टिमें आनेलायक भी नहीं हूँ, पर क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? आपके समान परम दयालु, परम सुहृद् कोई दीखता नहीं। फिर भी आपपर पूरा विश्वास, भरोसा नहीं होता है! इस कमीको आप ही मिटाओ। मैं मिटा नहीं सकता। मेरे पास ऐसे शब्द नहीं हैं; क्योंकि ऐसे भाव नहीं हैं! भावके बिना शब्द आते नहीं!'

'आपने अपनी तरफसे बहुत कृपा की है, फिर भी आपसे कृपा ही चाहता हूँ। क्या करूँ? अक्ल नहीं है, समझ नहीं है! याद नहीं रहता, भूल जाता हूँ! हे कृपासिन्धो! ऐसी कृपा करो कि आपको भूलूँ नहीं। मेरे भीतरमें ऐसी लगन नहीं पैदा होती! क्या करूँ? मैं कहनेलायक नहीं हूँ; परन्तु आपकी बात ऐसी है कि आपके यहाँ अयोग्य भी योग्य हो जाता है, अपात्र भी पात्र हो जाता है, पापी भी पवित्र हो जाता है! आपकी प्रभुता अपार है, अपार है, अपार है! कभी सन्तोंसे सुन लेता हूँ, कभी चिन्तनमें बात आ जाती है तो उससे कुछ होश आता है, पर फिर भूल जाता हूँ! हे नाथ, आप कृपा करो। आपने बहुत कृपा की है, बहुत अच्छा मौका दिया है, पर मैं चेत नहीं कर पाया! मुझे चेत करानेवाला आपके सिवाय और कौन है? एक आपके सिवाय कोई सुननेवाला नहीं है। मेरे पास शब्द नहीं है! प्रार्थना करनेका बल नहीं है! मैं अपनेको सर्वथा अयोग्य समझता हूँ। जो आपके प्यारे भक्त हुए हैं, उनकी प्रार्थनाको आपने सुना है। पर मैं वैसा हूँ नहीं! मेरेको ठीक दीखता है कि मैं सच्चे हृदयसे चाहता नहीं हूँ। आप सर्वसमर्थ हो, सब कुछ कर सकते हो। मेरे-जैसेको भी आप अपनाते हो, कृपा करते हो, यह मैं जानता हूँ। कई बातें याद आती हैं, पर फिर भूल जाता हूँ! मैं चाहता हूँ कि आपके दरबारमें पड़ा रहूँ, आपको याद करता रहूँ, आपकी तरफ ही मेरी दृष्टि रहे।'

यह बिनती रघुबीर गुसाईं।
और आस-बिस्वास-भरोसो, हरौ जीव-जड़ताई॥

(विनयपत्रिका १०३)

'मेरी योग्यतामें कमी है तो वह आप पूरी करो। मैं अपनी शक्तिसे पूरी नहीं कर सकता! प्रार्थना भी नहीं कर सकता! रो भी नहीं सकता! ऐसी इच्छा भी जोरदार होती नहीं! परन्तु एक बात है कि आपका हूँ! हे नाथ! हे मेरे प्रभो! हे स्वामिन्! मैं जैसा भी हूँ, आपका हूँ। आप निर्बलके बल हो! अरक्षितके रक्षक हो! मेरे-जैसे कमजोरके लिये आप मालिक हो! मैं यहाँतक आया हूँ तो आपकी कृपासे ही आया हूँ, मेरी योग्यतासे नहीं आया हूँ! मैं आपके सामने आनेलायक भी नहीं हूँ! आपने ही सबका उद्धार किया है। आपने ऐसे अयोग्योंको भी योग्य बनाया है। उनपर भी आपने कृपा की है।'

'हे मेरे नाथ! हे मेरे प्रभो! हे मेरे स्वामिन्! आप कृपा करो। आपने अपात्रको भी पात्र बनाया है। कुपात्रको भी पात्र बनाया है! आपको छोड़कर मैं कहाँ जाऊँ? दूसरी कोई ठौर दीखती नहीं! दूसरा कोई ऐसा मालिक भी नहीं दीखता। किसके आगे अपना रोना रोऊँ? कोई सुनता नहीं! सभी अपने-अपने काममें लगे हुए हैं। आप ही एक ऐसे हो जो सुनते हो। लोग भी भोले हैं, विश्वासमें आ जाते हैं! मेरेपर भरोसा करते हैं! मैं लायक नहीं हूँ। अयोग्यको योग्य आप ही बनाते हो। आप ही कृपा करो। यहाँतक भी आपने ही पहुँचाया है! मैं अभिमान कर लेता हूँ। यह मेरी महान् मूर्खता है! अब कहूँ तो क्या कहूँ? किससे कहूँ? कौन सुने? आपके सिवाय कोई सुननेवाला नहीं है।

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन॥

(मानस, अयोध्या० २०४)

—ऐसा मैं कह तो देता हूँ, पर मेरी संसारसे अरुचि नहीं होती, आपके चरणोंमें स्नेह नहीं होता, पूरा विश्वास नहीं होता, भरोसा नहीं होता! हे नाथ! हे प्रभो! हे स्वामिन्! ऐसी कृपा करो कि सच्चे हृदयसे आपमें लग जाऊँ।'

*** *** ***

विदेशी चीजोंको, फलोंको महत्त्व देना ठीक नहीं है। यह स्वास्थ्यके लिये भी खराब है। जिस देश और प्रान्तका प्राणी हो, उसके लिये उसी देश और प्रान्तकी चीज ही हित करनेवाली होती है—ऐसा धन्वन्तरि महाराजका कहना है। अत: विदेशके फल, चीजें अपने लिये उपयोगी नहीं हैं। वे शरीरके लिये खराब हैं। जैसे, जोधपुर प्रान्तमें रहनेवालेके लिये जोधपुर प्रान्तकी चीज ही स्वास्थ्यप्रद है। मारवाड़की चीज बंगालके लिये अच्छी नहीं होती और बंगालकी चीज मारवाड़के लिये अच्छी नहीं होती। दूसरे प्रान्तकी चीज स्वास्थ्य बिगाड़नेवाली होती है। इसलिये मेरी प्रार्थना है कि विदेशी चीज काममें मत लाओ। पैसा भी ज्यादा लगता है और बिगाड़ भी होता है, क्या फायदा? इसलिये सदा याद रखो कि अपने देशकी चीज ही अपने लिये हितकर होती है। अत: अपने देशकी चीज ही काममें लाओ।

विदेशकी चीज स्वास्थ्यके लिये भी ठीक नहीं है और देशके लिये भी ठीक नहीं है, प्रत्युत महान् घातक है! आपका देश पहलेसे ही गरीब है। विदेशी चीजें लेनेसे पैसा विदेशमें जायगा। यहाँ जो विदेशी कम्पनियाँ आयी हैं, वे बहुत नुकसान करनेवाली हैं! गाँधीजीने विदेशी चीजोंका घोर विरोध किया था। विदेशी खाद्य-पदार्थ तो बिल्कुल ही नहीं लेना चाहिये।

दूसरी बात मुझे विशेषरूपसे माताओं-बहनोंसे कहनी है। आजकलकी लड़कियाँ जो शृंगार करती हैं, विदेशी पोशाक पहनती हैं, विदेशकी नकल करती हैं, यह बहुत खराब, पतन करनेवाली चीज है! विदेशी वेशभूषा अच्छी नहीं है। हमारे दादागुरुजी कहते थे कि बेटी! सारा कपड़ा नया नहीं पहनना, साथमें एक-दो पुराना कपड़ा भी रखना। सन्तोंकी बातें बहुत लाभदायक होती हैं! लड़कियाँ बिगड़ जायँगी तो सब बिगड़ जायँगे! माँ बिगड़ेगी तो सन्तान बिगड़ेगी ही! माँ सुधरेगी तो सब सुधर जायँगे। जो अच्छे-अच्छे सन्त-महात्मा हुए हैं, उनकी माताएँ अच्छी हुई हैं।

श्रोता—एक लड़की पूछ रही है कि सत्संग करनेसे मेरी रुचि साधनमें बढ़ गयी है, जिस कारण पढ़नेमें मन नहीं लगता। अब साधन करना और पढ़ाई करना—दोनोंमें सामंजस्य कैसे हो?

स्वामीजी—भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये, माँ-बापकी प्रसन्नताके लिये, कुटुम्बकी प्रसन्नताके लिये पढ़ाई करनी है, अपने लिये नहीं। ऐसा करनेसे पढ़ना उपकार हो जायगा, सेवा हो जायगी! इसलिये केवल सेवाके लिये पढ़ना है, अपने लिये नहीं। अपने लिये केवल भजन करना है। फिर सब ठीक हो जायगा।

श्रोता—भावशरीर क्या है?

स्वामीजी—मैं भगवान्‌का हूँ—यह भावशरीर है। प्रेम भी भाव है। यह जड़ नहीं है, प्रत्युत चिन्मय है। आपका भाव चेतन है। साधक शरीर नहीं होता, प्रत्युत भाव होता है।

*** *** ***

संसारमें भगवान् इतने दुर्लभ नहीं हैं। वास्तवमें साधन बतानेवाला दुर्लभ है! एक श्लोक आता है—

अमन्त्रमक्षरं नास्ति नास्ति मूलमनौषधम्।
अयोग्यः पुरुषो नास्ति योजकस्तत्र दुर्लभः॥

'संसारमें ऐसा कोई अक्षर नहीं है, जो मन्त्र न हो; ऐसी कोई जड़ी-बूटी नहीं है, जो ओषधि न हो; और ऐसा कोई मनुष्य नहीं है, जो योग्य न हो; परन्तु इनका संयोजक दुर्लभ है।'

तात्पर्य है कि इस अक्षरका ऐसे उच्चारण किया जाय तो यह अमुक काम करेगा, इस जड़ी-बूटीको इस प्रकार दिया जाय तो अमुक रोग दूर हो जायगा, यह मनुष्य इस प्रकार करे तो बहुत जल्दी इसकी उन्नति हो जायगी—इस प्रकार बतानेवाले पुरुष संसारमें दुर्लभ हैं।

वास्तवमें ठीक तरहसे साधन बतानेवाला दुर्लभ है, इसलिये देरी हो रही है। साधन बतानेवाला अनुभवी हो और जाननेकी उत्कट इच्छा हो तो बहुत जल्दी काम होता है। मेहनत गुरु करता है, सिद्धि चेलेकी होती है! ठीक बतानेवाला वही होता है, जिसने अनुभव किया है। अनुभव किये बिना बतानेवाला ठीक नहीं होता। बिना अनुभवके वह क्या बताये? जिसने ठीक तरहसे अनुभव कर लिया है, वह बतायेगा तो पट काम हो जायगा!

कई लोग कहते हैं कि इस जन्ममें तो हमारा कल्याण नहीं होगा! यह बड़ी भारी गलती है! परमात्माकी प्राप्तिमें भविष्य नहीं है; परन्तु कब? जब जाननेवाला (अनुभवी) मिल जाय और हमारेमें जाननेकी उत्कण्ठा हो। जिस विषयको आदमी जानता नहीं, उस विषयमें वह अन्धा होता है। अन्धा आदमी दूसरेको मार्ग कैसे बताये? आजकल ऐसे ही आदमी मिलते हैं! उनमें गुरु बननेका शौक तो है, पर गुरु बननेकी योग्यता नहीं है। वे शिष्यकी पीड़ाको जानते ही नहीं! शिष्यका हित किस बातमें है—इस बातको वे जानते ही नहीं! शंकराचार्यजी कहते हैं—**'को वा गुरुर्यो हि हितोपदेष्टा'** (प्रश्नोत्तरी ७) 'गुरु कौन है? जो केवल हितका ही उपदेश करनेवाला है।' हितका उपदेष्टा होनेपर भी अनुभवी होनेकी आवश्यकता है। जानकार अनुभवी बताता है तो काम पट हो जाता है!

वास्तवमें काम बना-बनाया है! आध्यात्मिक बात आपकी अपनी बात है। कारण कि आप ईश्वरके अंश हैं—***'ईस्वर अंस जीव अबिनासी'***। ईश्वरका अंश होनेसे ईश्वर हमारे घरके हैं! माता-पिता जितने घरके होते हैं, इतने घरका कोई नहीं होता। पर यह बात लोग समझते नहीं! इसलिये मैं आप सबसे प्रार्थना करता हूँ कि कृपा करके भगवत्प्राप्तिको कठिन मत मानो। एकदम सच्ची बात है! क्योंकि यह तो अपने घरकी बात है। अपने माँ-बापकी बात बतानेवाला कोई मिल जाय तो कठिनता किस बातकी? ऐसे ही कोई बतानेवाला मिल जाता है तो परमात्मप्राप्ति कठिन नहीं रहती। देरी तभी लगती है, जब हमारी जोरदार इच्छा नहीं है अथवा गुरु समर्थ नहीं है।

पारस केरा गुण किसा, पलट्या नहीं लोहा।
कै तो निज पारस नहीं, कै बीच रहा बिछोहा॥

पारस भी असली हो, लोहा भी असली हो और बीचमें कोई आड़ न हो तो तत्काल काम होता है!

सांसारिक जानकारी रखनेवाला दूसरेको बताता नहीं, और पारमार्थिक जानकारीवाला दूसरेको बताये बिना रहता नहीं! सांसारिक जानकारीको लोग छिपाते हैं। परन्तु पारमार्थिक जानकार अपनी जानकारीको छिपा सकता ही नहीं! अगर वह छिपाये तो उस जानकारीका वह करेगा क्या? माँका दूध क्या माँ पीती है? वह तो बालकोंके लिये ही होता है। ऐसे ही उसकी जानकारी अनजानोंके लिये ही होती है। कारण कि वह तो जान गया, अब उसको जानकारीकी जरूरत क्या रही? वह जानकारी दूसरेके

लिये है। हाँ, कोई नहीं मिले तो बात अलग है! **फल पकता है तो तोता आता है, साधक पकता है तो सिद्ध आता है!**

श्रोता—आपने कहा *'कै तो निज पारस नहीं, कै बीच रहा बिछोहा'* तो यह बीचका बिछोह, आड़ क्या है?

स्वामीजी—साधक हृदय खोलकर मिलता नहीं। हृदय खुले बिना काम बनता नहीं। वह हृदय खोलकर मिले तो पट काम हो जायगा! हरेक जगह आदमीका हृदय खुलता नहीं। सरल स्वभाव हो, हृदयमें कपट नहीं हो—*'सरल सुभाव न मन कुटिलाई'*। साधकमें सरलता चाहिये और गुरुमें योग्यता चाहिये। फिर चट काम होता है! वह सरलता हरेक जगह नहीं मिलती। बिलमें जानेके लिये साँपको भी सीधा होना पड़ता है, नहीं तो वह जा नहीं सकता। भगवान् कहते हैं—

सरल सुभाव न मन कुटिलाई। जथा लाभ संतोष सदाई॥
मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा॥
बहुत कहउँ का कथा बढ़ाई। एहि आचरन बस्य मैं भाई॥

(मानस, उत्तर० ४६। १-२)

'सरल स्वभाव हो, मनमें कुटिलता न हो और जो कुछ मिले, उसीमें सदा सन्तोष रखे। मेरा दास कहलाकर यदि कोई मनुष्योंकी आशा करता है तो तुम्हीं कहो, उसका क्या विश्वास है? बहुत बात बढ़ाकर क्या कहूँ, हे भाइयो! मैं तो इसी आचरणके वशमें हूँ।'

दूसरेकी थोड़ी-भी आशा बाधा लगा देती है! इसलिये अनन्यभाव होना चाहिये। अपनी योग्यताकी, अपनी बुद्धिकी, अपने वर्णकी, अपने आश्रमकी आशा भी बाधक होती है!

*** *** ***

तत्त्वप्राप्तिमें देरी तब लगती है, जब ठीक बतानेवाला नहीं मिलता। बतानेवाला मिल जाय, पर सुननेवाला ठीक समझे नहीं, तब भी देरी लगती है। ठीक बतानेवाला मिल जाय और सुननेवाला ठीक समझ ले तो बहुत जल्दी काम होता है। **अगर विचार किया जाय तो संसारमें परमात्माकी प्राप्तिके समान सुगम काम कोई है ही नहीं!** तो फिर सबको प्राप्ति क्यों नहीं हो रही है? क्योंकि सबकी वैसी इच्छा नहीं है। एक परमात्माके सिवाय दूसरी कोई इच्छा न हो, ऐसा आदमी बहुत कम मिलता है। भीतरकी इच्छा कम होती है, इसलिये देरी लगती है।

जीव ईश्वरका अंश है, ईश्वरका खास बेटा है। अपने पिताकी, माँकी गोदीमें जानेमें क्या देरी लगे? भगवान् जीवमात्रके परमपिता हैं। उनकी प्राप्तिमें कठिनता कैसी? अपनी इच्छा कम हो और बतानेवाला न मिले, तब कठिनता होती है। ठीक बतानेवाला हो तो जल्दी प्राप्ति होती है। जल्दी प्राप्ति क्यों होती है? इसमें एक कारण है कि यह परमात्माका अंश है, और दूसरा कारण है कि परमात्मा सब जगह परिपूर्ण हैं। इसलिये वे सबसे नजदीक हैं।

तेरा साहिब है घट मांही, बाहर नैना क्यों खोले।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, साहिब पाया तृण-ओले॥

जो सब जगह मौजूद होता है, उसकी प्राप्तिके लिये कहीं जाना नहीं पड़ता। हम जहाँ हैं, वहीं परमात्मा मौजूद हैं। अतः परमात्मा दूर नहीं हैं, प्रत्युत उनकी तरफ वृत्ति नहीं है। जिन लोगोंको देरी लगती है, उनको ठीक बतानेवाले मिले नहीं। आजकल कथा सुनानेवाले तो बहुत हैं, पर ठीक तत्त्वको जाननेवाले बहुत कम हैं। **जो चीज अपनी नहीं है, मिलने और बिछुड़नेवाली है, उस (धन, जमीन,**

मकान आदि)-की प्राप्ति भी लोग कर लेते हैं, फिर जो वास्तवमें अपनी है, उसको प्राप्त करनेमें देरी क्यों?

भगवान् मिलने और बिछुड़नेवाले नहीं हैं। वे मिले हुए हैं और बिछुड़ते हैं ही नहीं! वे सदा साथमें रहनेवाले हैं। वे आपसे अलग जा सकते ही नहीं! उनमें आपसे अलग होनेकी सामर्थ्य नहीं है! जरा सोचो, जो सर्वव्यापक है, वह आपसे अलग कैसे हो जाय? प्रह्लादजीको पक्का विश्वास था कि भगवान् सब जगह हैं तो उनके लिये भगवान् पत्थरमेंसे प्रकट हो गये!

संसार एक क्षण भी टिकता नहीं और परमात्मा कभी अलग होते ही नहीं। तो फिर परमात्मा मिलते क्यों नहीं? क्योंकि हम दूसरी चीजोंकी इच्छा करते हैं, परमात्माकी नहीं। आप कभी कोई इच्छा मत करो, इच्छामात्रका त्याग कर दो तो परमात्मा चट मिल जायँगे! **संसारकी इच्छा ही परमात्माकी प्राप्तिमें देरी करानेवाली है।** संसारकी इच्छा परमात्मप्राप्तिमें आड़ जरूर लगा देगी, फायदा कुछ नहीं! संसार खुद तो ठहरता नहीं और भगवान्‌की प्राप्ति होने नहीं देता!

शरीर किसीके साथ रहेगा ही नहीं, फिर भी सब इच्छा करते हैं कि मेरा शरीर बना रहे, रोग मिट जाय और शरीर रह जाय। आप कितनी ही इच्छा कर लो, शरीर रहेगा ही नहीं। जो चीज रहेगी ही नहीं, उसकी इच्छा छोड़नेमें क्या बाधा लगती है? उसकी इच्छा करना क्या समझदारी है? चाहे तो शरीरको रख लो, चाहे उसके रहनेकी इच्छा छोड़ दो। रख तो सकते नहीं, तो इच्छा छोड़ दो।

*** *** ***

श्रोता—आपने कहा था कि जो बात मुझे चालीस सालमें मिली, वह चालीस मिनटमें बतायी जा सकती है, तो वह बात क्या है?

स्वामीजी—चालीस मिनट भी नहीं लगेंगे! वह बात यह है कि संसारकी इच्छा मिट जाय तो तत्काल तत्त्वप्राप्ति हो जायगी। संसारकी इच्छा रखनेसे फायदा कुछ नहीं और नुकसान बड़ा भारी है! इच्छा छोड़नेसे तत्काल प्राप्ति हो जाय। भीतरकी इच्छाओंका त्याग किये बिना काम होता नहीं।

कबीर मनुआँ एक है, भावे जिधर लगाय।
भावे हरि की भगति करे, भावे विषय कमाय॥

संसारकी इच्छा छोड़ दो तो बहुत जल्दी काम हो जायगा। पर यह बात जल्दी अक्लमें आती नहीं! मैं भुक्तभोगी हूँ! संसारकी इच्छा छोड़ दो तो परमात्माकी इच्छा स्वतः-स्वाभाविक पूरी हो जायगी। उसके लिये उद्योग नहीं करना पड़ेगा। संसारकी इच्छा न छूटे तो भगवान्‌से प्रार्थना करो कि 'हे नाथ! संसारकी इच्छासे पिण्ड छुड़ाओ'! उनकी कृपासे काम होगा। **भगवान् कृपा कैसे करते हैं—यह मैं नहीं जानता, पर वे कृपा करते हैं—यह मैं जानता हूँ।** हमारी योग्यताके बिना काम होता है—ऐसी कृपा भगवान् करते हैं!

सच्ची बातका दुःख भगवान्‌से सहा नहीं जाता। परन्तु संसारके लिये रोओ तो भगवान् सह लेते हैं! मर जाओ तो भी परवाह नहीं करते! परमात्माकी इच्छा जोरदार हो और रो पड़ो तो यह दुःख भगवान् सह नहीं सकते; क्योंकि यह सच्चा दुःख है। सांसारिक पदार्थोंके लिये रोओ तो भगवान्‌पर कुछ असर नहीं पड़ता। भगवान् यह देखते हैं कि पहलेसे ही काफी दुःख है, फिर और दुःख क्यों माँगता है!

यह बहुत सुगम रास्ता है। परन्तु अपनेसे होता नहीं और क्या बाधा है—यह जानते नहीं तो आप दुःखी हो जाओ। वह दुःख भगवान् नहीं सहते। भगवान् किसी सन्तको मिलायेंगे, कोई युक्ति बतायेंगे,

कोई उपाय बतायेंगे! भगवान्‌के पासमें जितने उपाय हैं, उनको हम जानते नहीं हैं! **आप केवल दुःखी हो जाओ। काम हो जायगा!** यह उपाय हम सब जानते हैं और काममें भी लिया हुआ है। जब हम बालक थे, तब कोई इच्छा होती तो रो देते। काम बन जाता! माँको सब काम छोड़कर हमारा काम करना पड़ता! भगवान् तो सदाकी माँ है! इससे सुगम बात और क्या बताऊँ? रोनेसे मुफ्तमें काम बनता है! भगवान्‌को 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारो और व्याकुल हो जाओ। सब काम बन जायगा! यह सबके लिये एकदम बढ़िया दवाई है!

ज्ञानमार्गमें देरी हो सकती है, पर भक्तिमार्गमें देरी नहीं होती। गीतामें गुरुकी बात ज्ञानमार्गवालोंके लिये आयी है—'**आचार्योपासनम्**' (गीता १३। ७)। भक्तिमार्गवालोंके लिये गुरुकी बात नहीं आयी है। भक्तिमार्ग बड़ा सरल, सुगम है। इसमें भगवान्‌का बड़ा सहारा है! ठाकुरजी सब काम करते हैं! आप भगवान्‌के आगे रोओ तो सही! देखो कैसे काम बनता है!

*** *** ***

श्रोता—गीताजीका पाठ, रामायणका पाठ और भगवन्नाम-जप—इन तीनोंमें कौन श्रेष्ठ है?

स्वामीजी—इनमें लगन श्रेष्ठ है। भीतरकी लगन होनी चाहिये, चाहे वह पाठके साथ हो, चाहे नामके साथ हो।

श्रोता—आप कहते हैं कि भलाई करो, पर भलाई करते हैं तो हमारा नुकसान होता है! नुकसान सहते रहें और भलाई करें या भलाई करना छोड़ दें?

स्वामीजी—भलाई करना मत छोड़ो। नुकसान सह लो। परिणाममें नुकसान नहीं होगा। कृपा करके कृपानाथ! आप भलाई मत छोड़ो, मत छोड़ो, मत छोड़ो! दुःख पा लो, पर भलाई मत छोड़ो। भलाई छोड़ोगे तो दुःखोंका अन्त नहीं आयेगा! आज आप भले ही बात मानो, चाहे मत मानो, बहुत दुःख पाना पड़ेगा, पड़ेगा, पड़ेगा!!

श्रोता—आपने कहा कि मनसे सम्बन्ध छोड़ दो, तो मनसे सम्बन्ध कैसे छोड़ें?

स्वामीजी—मन नहीं माने तो आप मान जाओ! मन नहीं लगता तो आप लग जाओ। आप मनसे अलग हो। आप और मन एक हो क्या? बताओ। आपसे हम पूछें कि आपका मन है या मनके आप हो अथवा मन आप हो? आपको कहना ही पड़ेगा कि मन हमारा है। मनको हमारा (अपना) मत मानो। मन हमारा कहना नहीं मानता, इसलिये हम मनको हमारा नहीं मानेंगे।

*** *** ***

श्रोता—आपने कहा था कि सबको छुट्टी दे दो। अगर बच्चोंको छुट्टी दे दें तो वे उद्दण्ड हो जायँगे। इस विषयमें क्या करना चाहिये?

स्वामीजी—उनको प्रेमसे न्याययुक्त बात कह दो और मनसे छुट्टी दे दो। पर लोगोंमें इसकी प्रसिद्धि नहीं करनी है। वे मानें तो आनन्द, नहीं मानें तो बहुत आनन्द! आजकल प्रायः करके बच्चे कहना नहीं मानते। जब कहना ही नहीं मानें तो क्या करें? बताओ। छुट्टी देनेका यह अर्थ नहीं है कि बालकोंका पालन-पोषण नहीं करना चाहिये, उनको शिक्षा नहीं देनी चाहिये। छुट्टी देनेका अर्थ है कि हम मालिक नहीं बनेंगे।

हमने तो पहलेसे ही सबको छुट्टी दे रखी है! हम न किसीके गुरु बनते हैं, न किसीके मालिक बनते हैं, पर बातें बढ़िया सुना देते हैं। नीयत अच्छी रखते हैं। बातें सुनानेमें कपट करते नहीं। आप बात नहीं मानें तो नाराज होते नहीं। आप हमारा कहना नहीं मानें तो क्या करें? बताओ। छुट्टी देनेका

मतलब है कि आपपर शासन नहीं करेंगे। अच्छी बात कह देंगे, फिर जैसी मरजी हो, वैसे करो!

श्रोता—एक माँका प्रश्न है कि मेरा पचीस वर्षका लड़का है, वह मेरी बात मानता नहीं, झगड़ा करता है! मैं क्या करूँ?

स्वामीजी—उसको प्रेमसे समझाओ कि माँ-बेटा भी आपसमें लड़ें तो कहाँ प्रेम रहेगा? पचीस वर्षका जवान लड़का माँसे लड़े तो वह सेवा कब करेगा? माँ चाहे जितना शासन करे, कुछ भी कहे, माँसे लड़ाई मत करो। **जो माँ-बापका आदर करता है, उसका भगवान् आदर करते हैं।** शास्त्रमें सबसे ऊँचा माँका दर्जा बताया है। माँका नाम सबसे पहले लेते हैं; जैसे—सीताराम, राधेश्याम, गौरीशंकर आदि। उपनिषद्में भी सबसे पहले माँका नाम आया है—

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव।

(तैत्तिरीयोपनिषद् १। ११)

'तुम मातामें देवबुद्धि रखनेवाले बनो, पितामें देवबुद्धि रखनेवाले बनो, आचार्यमें देवबुद्धि रखनेवाले बनो, अतिथिमें देवबुद्धि रखनेवाले बनो।'

उस माँकी बात न मानना बड़ा भारी अन्याय है! हमारा पालन करनेमें माँने कितना कष्ट सहा है! रातों जगकर पालन किया है! पेशाब कर देते तो गीली जगह माँ सोती और सूखी जगह बेटेको सुलाती कि बच्चेको सरदी न लग जाय! माँके समान कोई सेवा करनेवाला नहीं है! दाईका काम, नाईका काम, नौकरका काम, मेहतरका काम, छोटे-से-छोटा और ऊँचे-से-ऊँचा सब काम माँ करती है! माँने खाना सिखाया, बैठना सिखाया, चलना सिखाया, पढ़ना सिखाया! उस माँसे भी लड़े तो वह कलियुगकी मूर्ति है!

माँसे मेरा कहना है कि तुम क्षमा कर दो। तुम्हारी गोदीमें टट्टी फिरी है, तुम्हारी गोदीमें पेशाब किया है—ऐसा आपने सहा है, तो और भी सहो! माँ पृथ्वीका स्वरूप है। अन्न, जल सब पृथ्वीसे मिलता है। हम पृथ्वीको लातोंसे मारते हैं, उसपर थूकते हैं, टट्टी-पेशाब करते हैं, फिर भी पृथ्वी माता क्षमा करती है। ऐसे आप भी क्षमा करो और प्रेमसे समझाओ। जब वह लड़ाई करे, उस समय मत बोलो, चुप रहो। दूसरे समय प्यारसे, सिरपर हाथ रखकर समझाओ। वह माने तो अच्छी बात, नहीं माने तो बहुत अच्छी बात! **हृदयमें यह धारण कर लो कि सिवाय भगवान्के कोई अपना है ही नहीं! केवल भगवान्को अपना मानो। न कोई बेटा है, न पोता है, न स्त्री है, न भाई है, न सम्बन्धी है, न माँ है, न बाप है, केवल भगवान् अपने हैं।** सच्ची बात तो यह है कि अनन्त ब्रह्माण्डोंमें तिल-जितनी चीज भी आपकी नहीं है! इसलिये उपाय यह है कि मनसे सबको छुट्टी दे दो। छुट्टी नहीं दोगे तो और करोगे क्या? बताओ।

सज्जनो! अपने धर्मका पालन करो। अधर्म मत करो। अन्याय मत करो। प्रेमका बर्ताव करो। उद्दण्डता मत करो। सत्संग करनेवाले भाई-बहन भी अगर प्रेमका, आदरका बर्ताव नहीं करेंगे तो हम किनसे आशा रखेंगे? सत्संग करनेवाले भी नहीं करेंगे तो कौन करेगा? आप मामूली नहीं हो। आप सत्संगी हो, सत्संगमें रुचि रखते हो। यहाँ आने-जानेमें कितना कष्ट सहते हो! कितने पैसे खर्च करते हो! आपसे ही हम अच्छी बातकी आशा नहीं रखें तो और किससे रखें? सबके साथ अच्छा बर्ताव आप भी नहीं करोगे तो कौन करेगा? दूसरोंको तो अच्छी बातें सुननेको भी नहीं मिलतीं—'**श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः**' (कठोपनिषद् १। २७)। कौन सुनायेगा? क्यों सुनायेगा?

सबसे प्यारसे बोलो, प्यारसे सुनो, प्यारसे देखो। किसीको कोई चीज भी दो तो प्यारसे दो। हरेक

बर्तावमें प्यारका सम्पुट लगा दो। शरीरोंका भरोसा नहीं है कि कबतक जीयेंगे! अब आगे जितना जीवन है, उसमें सबसे प्रेमका, आदरका बर्ताव करो। दूसरा करे या न करे, उसकी परवाह मत करो। दूसरा माने या न माने, राजी हो या नाराज हो, आप अपना काम ठीकसे करो—'**स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः**' (गीता १८। ४५) 'अपने-अपने कर्ममें प्रीतिपूर्वक लगा हुआ मनुष्य सम्यक् सिद्धि (परमात्मा)-को प्राप्त कर लेता है'। सबके साथ स्नेहका, आदरका, मीठा, अच्छा बर्ताव करो। पहले दुःख पाना पड़ता है, पर अन्तमें विजय आपकी है।

*** *** ***

सब कुछ एक परमात्मा ही है—'**वासुदेवः सर्वम्**' (गीता ७। १९)। परमात्माके सिवाय कुछ नहीं है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहंकार, जीव और ईश्वर—ये सब-के-सब एक परमात्मा ही है। इसमें उद्योग इतना ही है कि इसको याद रखना है। जहाँ दृष्टि जाय, केवल याद रखो कि यह परमात्मा है। देखने, सुनने, समझनेमें जो आये, वह सब परमात्माका स्वरूप है। कितनी सुगम बात है! इस सुगम बातको केवल याद रखना है। इतना ही नहीं करोगे तो फिर क्या करोगे? वृक्ष देखो तो भगवान् हैं, मनुष्य देखो तो भगवान् हैं, पशु-पक्षी देखो तो भगवान् हैं, पहाड़ देखो तो भगवान् हैं, जल देखो तो भगवान् हैं, हवा देखो तो भगवान् हैं, आकाश देखो तो भगवान् हैं। सब भगवान् ही हैं, और है ही क्या! इसको केवल याद रखना है। यह नामजपसे कम नहीं है। यह नामजपसे भी श्रेष्ठ बात है!

श्रोता—इसको व्यवहारमें कैसे लायें?

स्वामीजी—व्यवहारमें यह लाना है कि राग-द्वेष, काम-क्रोध नहीं करना है। सब भगवान् हैं—यह बात दृढ़ हो जायगी तो राग-द्वेष, काम-क्रोध अपने-आप शान्त हो जायँगे। अगर व्यवहारमें राग-द्वेष, काम-क्रोध हो जायँ तो 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' पुकारो।

अपने मित्रोंको कह दो कि वे आपको याद दिला दिया करें कि ये भगवान् हैं। एक ऐसा मित्र बना लो, जो आपको याद दिलाता रहे। आपसमें एक-दूसरेकी सहायता करो। राग-द्वेष हो जाय तो एक-दूसरेको चेत करा दो। केवल याद दिलानेमात्रसे बड़ा फायदा है, और बड़ा भारी उपकार है! भगवान्‌की याद सम्पूर्ण विपत्तियोंका नाश करनेवाली है—'**हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम्**' (श्रीमद्भा० ८। १०। ५५)। असली मित्र वही है, जो भगवान्‌की याद करा दे। **सन्त, श्रेष्ठ पुरुष, हमारे हितैषी, माता, पिता, सुहृद्, मित्र वही हैं, जो हमें भगवान्‌की याद करा दें।** अच्छे मित्रके लक्षण इस प्रकार बताये गये हैं—

पापान्निवारयति योजयते हिताय
गुह्यानि गूहति गुणान् प्रकटीकरोति।
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः॥

(भर्तृहरिनीतिशतक ७३)

'सन्तलोग अच्छे मित्रका यह लक्षण बताते हैं कि वह मित्रको पापोंसे रोकता है, कल्याणकारी कामोंमें लगाता है, उसकी गुप्त बातको छिपाता है, उसके गुणोंको प्रकट करता है, विपत्तिमें उसका साथ नहीं छोड़ता और समय पड़नेपर (धन आदि) देता है।'

असली सत्संग अर्थात् सत्‌का संग है—भगवान् याद रहें। परमात्मा 'सत्' हैं और उनको याद रखना 'सत्संग' है। केवल इतना याद कर लो कि यह परमात्मा है तो इतनेमात्रसे भाव शुद्ध हो जायगा।

चित्रकार पहले रेखा खींचता है, फिर उसमें रंग भरता है। ऐसे ही भगवान्‌को याद करना रेखाचित्र हो गया! भगवान्‌को याद करना मामूली बात नहीं है। **हरदम जप करनेसे इतनी सिद्धि नहीं होती, जितनी भगवान्‌को याद करनेसे होती है।**

हमने सोचा कि सुगमतासे सब भाइयोंका कल्याण कैसे हो? सब बहनोंका कल्याण कैसे हो? सबका उद्धार कैसे हो? तो सुगम मार्ग यह है कि हरदम भगवान्‌को याद रखो कि यह सब भगवान् हैं। यह सबका कल्याण करनेवाली बात है!

*** *** ***

श्रोता—आपने कहा कि सबको वासुदेव मानो—'**वासुदेवः सर्वम्**', तो भक्त अपने-आपको क्या माने? वासुदेव माने या सेवक माने?

स्वामीजी—दोनों मान सकते हैं। ऐसा माने कि सभी परमात्माके स्वरूप हैं तो मैं भी परमात्माका स्वरूप हूँ; परन्तु इसका ज्ञान पूरा न होनेतक ऐसा माने कि मैं भक्त हूँ, मैं दास हूँ, मैं जिज्ञासु हूँ। तात्पर्य है कि वास्तवमें मैं परमात्मस्वरूप ही हूँ, पर जबतक इसको पूरा नहीं समझा, तबतक मैं दास हूँ।

श्रोता—गरुड़जीके लिये कहा गया है—*'तबहिं होइ सब संसय भंगा। जब बहु काल करिअ सतसंगा॥'* (मानस, उत्तर० ६१। २)। हम तो साधारण आदमी हैं। जब गरुड़जीको लम्बे समयतक सत्संग करनेके लिये कहा गया है तो हमारी क्या दशा होगी!

स्वामीजी—अगर आपकी जिज्ञासा जोरदार है तो आप गरुड़जीसे भी तेज हो सकते हो! आप गरुड़जीके प्रभावसे, उनकी शक्तिसे तो तेज नहीं हो सकते, पर आपकी पारमार्थिक रुचि अधिक है तो आप गरुड़जीसे भी तेज हो सकते हो।

श्रोता—आपने कहा कि अपनेपनसे भगवान्‌की प्राप्ति जल्दी होती है, तो भगवान्‌को देखे बिना अपनापन कैसे हो?

स्वामीजी—मैं आपसे पूछूँ कि एक ऐसा पारस होता है, जिसका स्पर्श होनेपर लोहा भी सोना बन जाता है, तो उस पारसको आपने कभी देखा है? नहीं देखा है तो पारस अच्छा लगता है कि बुरा? भगवान् सबसे कीमती हैं। वैसा कीमती कोई है नहीं, हुआ नहीं, होगा नहीं, हो सकता नहीं।

अपनापन होनेमें देखना कारण नहीं है। देखनेसे अपनापन नहीं होता, प्रत्युत भीतरसे माननेसे होता है। भगवान्‌को जितना ऊँचा मानोगे, उतना उनमें चित्त खिंचेगा। अगर भीतरसे जँच जाय कि भगवान् सबसे श्रेष्ठ हैं तो भगवान्‌में लग ही जाओगे, चाहे वे दीखें या न दीखें। केवल भगवान् ही अच्छे लगने चाहिये। सांसारिक भोग जितने अच्छे लगते हैं, उतना ही भगवान्‌में अच्छापन कम है!

भक्तोंके चरित्र पढ़ो, नामजप करो और हरदम चलते-फिरते, उठते-बैठते प्रार्थना करो कि 'हे नाथ! आप अच्छे लगो'।

श्रोता—पहले आप शरणागतिको श्रेष्ठ मानते थे, आजकल आप '**वासुदेवः सर्वम्**' पर जोर दे रहे हैं, दोनोंमें कौन श्रेष्ठ है?

स्वामीजी—वास्तवमें दोनों एक हैं। अभी जो '**वासुदेवः सर्वम्**' की बात कह रहे हैं, यह शरणागतिको ही पुष्ट करनेवाली है।

श्रोता—परिवार-नियोजनके लिये ऑपरेशन करवाना और गर्भपात करवाना—इन दोनोंमें ज्यादा खराब

कौन-सा है?

स्वामीजी—ज्यादा पाप गर्भपातमें है, और ज्यादा नुकसान ऑपरेशनमें है।

श्रोता—मैं भगवान्‌का भजन करने बैठती हूँ तो मुझे आप याद आते हो, भगवान् याद नहीं आते! मैं क्या करूँ?

स्वामीजी—मैं याद आ जाऊँ तो कोई बात नहीं, पर याद करना नहीं। संसार याद आ जाय तो क्या करे? भेड़-बकरी याद आ जाय, गाय याद आ जाय तो कोई पाप नहीं है। याद करना नहीं चाहिये। याद भगवान्‌को करना चाहिये।

श्रोता—मैंने एक पुस्तकमें पढ़ा है कि भगवत्प्राप्तिका पात्र बन जाओ, तो पात्र बनना क्या है?

स्वामीजी—केवल भगवान्‌की उत्कण्ठा हो और दूसरी सब इच्छाएँ मिट जायँ। खाने-पीनेकी, रहनेकी, जीनेकी भी इच्छा न रहे तो पात्र हो जाओगे।

श्रोता—नामजप और सुमिरनमें क्या फर्क है?

स्वामीजी—नामजप जबानसे होता है और सुमिरन (स्मरण) मनसे होता है।

श्रोता—रामायण कहती है—***'साधु ते होइ न कारज हानी'*** (मानस, सुन्दर० ६। २)। परन्तु मेरा अनुभव यह है कि सन्तोंने ही मुझे लूटा है!

स्वामीजी—वे सन्त हैं ही नहीं—***'कालनेमि जिमि रावन राहू'*** (मानस, बाल० ७। ३)! कालनेमि सन्त था क्या? रावण सन्त था क्या? आपको कालनेमि, रावण जैसे लोग मिले हैं, सन्त नहीं मिला है! क्या रावण, कालनेमि मिलनेसे कल्याण हो जायगा? उनसे तो दुःख ही मिलेगा! यह तो होगा ही! यह न्याय है!

*** *** ***

श्रोता—आप कहते हो कि मैं भगवान्‌का अंश हूँ और एक तरफ कहते हो कि **'वासुदेवः सर्वम्'** सब भगवान्‌के स्वरूप हैं, तो मुझे स्पष्ट आज्ञा करो कि मैं कौन-सा मानूँ? भगवान्‌का अंश मानूँ या भगवत्स्वरूप मानूँ?

स्वामीजी—आपको प्यारा कौन-सा लगता है? मेरा बताया हुआ इतना काम नहीं करेगा, जितना आपको प्यारा लगनेवाला काम करेगा।

श्रोता—भगवान्‌का अंश अच्छा लगता है!

स्वामीजी—बहुत अच्छा, यही मानो। हमारी सम्मति भी यही है।

श्रोता—यहाँके सत्संगसे मुझे बहुत लाभ होता है। घरमें ऐसा सत्संग कैसे मिले? इसका उपाय बतायें।

स्वामीजी—हमारी पुस्तकें पढ़ो। गीता 'साधक-संजीवनी, परिशिष्ट-सहित' सबसे मुख्य है।

श्रोता—ससुरालवाले दहेज माँगते हैं, इसलिये हमको लड़की पैदा करनेमें डर लगता है, जिससे गर्भपात करवाते हैं, तो दहेज लेनेवाले पापी हैं कि हम पापी हैं?

स्वामीजी—दोनों ही पापी हैं! पापी होनेमें कोई खर्चा लगता है क्या? हमारा वंश माँसे चला है। माँका दर्जा सबसे ऊँचा है। छोटी-सी बच्ची भी मातृशक्ति है। उसका गर्भपात करना बड़ा भारी पाप है! लड़केका गर्भपात करनेकी अपेक्षा लड़कीका गर्भपात करना ज्यादा पाप है! कारण कि वह

वंश पैदा करनेवाली मातृशक्ति है। आप-हम सब माँसे पैदा हुए हैं, माँका दूध पिया है, माँकी गोदीमें खेले हैं! माँने खुद कष्ट पाकर हमारा पालन किया है।

लोग समझते नहीं हैं! दहेजके धनसे आप धनी हो जाओगे, यह बात है ही नहीं। **जो पैसा दूसरेको दुःख देकर आया है, वह आपके घरके पैसेका भी नाश करेगा!**

अन्यायोपार्जितं द्रव्यं दशवर्षाणि तिष्ठति।
प्राप्ते चैकादशे वर्षे समूलं तद्विनश्यति॥

(चाणक्यनीतिदर्पण १५। ६)

'अन्यायसे उपार्जित धन दस वर्षतक ठहरता है, पर ग्यारहवाँ वर्ष आनेपर वह मूलसहित नष्ट हो जाता है।'

कन्यारूपी धन लेनेका भी कर्जा चढ़ता है, फिर साथमें धन भी माँगना घोर अन्याय है! दहेजमें मिला हुआ धन दान-पुण्यमें लगा देना चाहिये, घरमें नहीं रखना चाहिये। **बेटेके ससुरालसे आया हुआ धन अपने काममें नहीं लेना चाहिये। वह तो सब-का-सब बाँट देना चाहिये।** अगर वहाँसे थोड़ी मिठाई आये तो वैसी मिठाई अपने घरसे, अपने पैसोंसे बनाकर समाजमें बाँटनी चाहिये। जो कन्यारूपी धनका निरादर करता है, उसके वंशका नाश होता है, बड़ा भारी पाप लगता है!

विवाहके बाद लड़कीको भी अपने पीहरका धन नहीं लेना चाहिये। विवाहके बाद उसका घर बदल जाता है, गोत्र बदल जाता है।

*** *** ***

गीताके सातवें अध्यायमें भगवान् कहते हैं—

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥

(गीता ७। ४)

'पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश (—ये पञ्चमहाभूत) और मन, बुद्धि तथा अहंकार—इस प्रकार यह आठ प्रकारके भेदोंवाली मेरी यह अपरा प्रकृति है।'

भगवान्‌ने अहंकारको अपना (**इतीयं मे**) कहा है। उस अहंकारको आपने अपना मान लिया—यह गलती की है। अहंकारको भगवान्‌का मानना चाहिये। अहंकार भगवान्‌का है, आपका नहीं है—यह बहुत बढ़िया बात है! अहंकार अपरा प्रकृतिका आठवाँ अंश है। जैसे मिट्टीका ढेला भगवान्‌का है, अपना नहीं है, ऐसे ही अहंकार भी भगवान्‌का है, अपना नहीं है। मेरी दृष्टिसे यह बहुत उत्तम, बहुत श्रेष्ठ बात है! अहंकार मेरा नहीं है, इसलिये '**निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति**' (गीता २। ७१) अर्थात् जो निर्मम और निरहंकार होता है, वह शान्तिको प्राप्त होता है। कारण कि अपना न मानकर भगवान्‌का मानेंगे, तभी निर्मम-निरहंकार होंगे। अगर अपना मानेंगे तो निर्मम-निरहंकार कैसे होंगे? निर्मम-निरहंकार होना 'ब्राह्मी स्थिति' है—'**एषा ब्राह्मी स्थितिः**' (गीता २। ७२)। **अगर मैं-मेरापन छोड़ दो तो आप साक्षात् ब्रह्म हो!**

जैसे कन्यादान एक बार ही होता है, ऐसे ही मैं-मेरेका त्याग भी एक ही बार होता है। यह मेरा नहीं है—ऐसा एक बार कह दिया तो अब दूसरी बार क्या कहेंगे?

*** *** ***

श्रोता—'ये चैव सात्त्विका भावा०' (गीता ७। १२)—इसकी व्याख्यामें आपने लिखा है कि आप

गुणोंमें फँस जाते हो, इसलिये भगवान्‌का भजन नहीं कर सकते। हम गुणोंमें नहीं फँसें, ऐसा कोई उपाय बतायें।

स्वामीजी—शरीर मैं नहीं हूँ, शरीर मेरा नहीं है और शरीर मेरे लिये नहीं है—ये तीन बातें मान लो। शरीर केवल संसारकी सेवाके लिये है। अतः केवल सेवाके लिये ही जीना है। सेवाके लिये जीते रहें—इसके लिये ही अन्न, जल और नींद लेनी है।

श्रोता—मेरा भजन-ध्यानमें तो मन लगता है, पर सत्संगमें मन नहीं लगता। मुझे सत्संग करना चाहिये या भजन-ध्यान करना चाहिये?

स्वामीजी—भजन-ध्यान करना चाहिये। **जैसे व्यापार वही करना चाहिये, जिसमें रुपया ज्यादा पैदा हो, ऐसे ही साधन वही करना चाहिये, जिसमें मन ज्यादा लगे।** एक समय सत्संग भी कर लेना चाहिये। कारण कि सत्संग एकान्तमें किये जानेवाले साधनकी पुष्टि करनेवाला होता है।

श्रोता—कई महिलाएँ भूलसे गर्भपात करवा चुकी हैं। उनके लिये क्या प्रायश्चित्त है, जिससे उनके कल्याणमें कोई बाधा नहीं रहे?

स्वामीजी—नामजप करें। सवा लाखसे कम नहीं और तीन लाखसे ज्यादा नहीं—इतना नामजप रोजाना (एक वर्षतक) करें। भगवान्‌से प्रार्थना करें कि फिर कभी ऐसा काम नहीं करूँगी। सब माफ हो जायगा।

श्रोता—शरीरके रहते हुए भगवत्प्राप्ति होनेकी क्या कसौटी है? कैसे पता चले कि भगवत्प्राप्ति हो गयी?

स्वामीजी—भोजन करनेकी क्या कसौटी है? जल पीनेकी क्या कसौटी है? बताओ। मानो तृप्त हो गये, अब कुछ भी नहीं चाहिये। इस तरह कुछ भी नहीं चाहिये, कभी भी नहीं चाहिये, किंचिन्मात्र भी नहीं चाहिये—यह कसौटी है। भगवत्प्राप्ति होनेपर स्वप्नमें भी कोई चाहना नहीं रहती। सदाके लिये तृप्ति हो जाती है।

श्रोता—सन्तकी लिखी हुई पुस्तक पढ़ना, सन्तके मुखसे प्रवचन सुनना और सन्तके पास जाकर बैठना—इन तीनोंमें कौन-सी बात श्रेष्ठ है?

स्वामीजी—सन्तके वचन पढ़ना-सुनना और वचनोंमें जो अच्छा लगे, उनका पालन करना।

श्रोता—मेरी सन्तोंके दर्शनकी इच्छा होती है, पर पतिदेव मना करते हैं! वे कहते हैं कि सन्तोंके दर्शनसे क्या मिलता है? उनको क्या समझाऊँ?

स्वामीजी—सन्तोंके दर्शनसे पाप दूर हो जाते हैं—***'संत दरस जिमि पातक टरई'*** (मानस, किष्किन्धा० १७। ३)।

गङ्गा पापं शशी तापं दैन्यं कल्पतरुर्हरेत्।
पापं तापं तथा दैन्यं सद्यः साधुसमागमः॥

(गर्गसंहिता, अश्वमेध० ६२। ९)

'गंगा पापका, चन्द्रमा तापका और कल्पवृक्ष दीनताका नाश करता है। परन्तु सन्तोंका संग पाप, ताप और दीनता—तीनोंका तत्काल नाश कर देता है।'

श्रोता—मैंने बहुत मन्दिरोंके, तीर्थोंके दर्शन किये, पर मेरी श्रद्धा नहीं हो रही है, क्या करूँ?

स्वामीजी—कोई हर्ज नहीं। भगवान्‌पर श्रद्धा होती है कि नहीं?

श्रोता—भगवान्‌पर श्रद्धा होती है।

स्वामीजी—बस, एक भगवान्‌पर श्रद्धा करो। अन्य किसीपर श्रद्धा करनेकी जरूरत नहीं। न साधुओंपर श्रद्धा करनेकी जरूरत है, न तीर्थोंपर। एक कहावत है कि हाथीके पैरमें सब पैर समा जाते हैं—**'सर्वे पदा हस्तिपदे निमग्नाः'**।

श्रोता—भगवान्‌के स्मरण और ध्यानमें क्या अन्तर है?

स्वामीजी—स्मरण पहले होता है, ध्यान पीछे होता है। स्मरणमें बार-बार भगवान्‌की याद आती है। ध्यानमें वृत्ति भगवान्‌में लग जाती है। वृत्ति तल्लीन होनेपर समाधि होती है।

*** *** ***

शान्ति त्यागसे मिलती है—**'त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्'** (गीता १२। १२)। मुश्किल यह हो गयी कि सभी शान्ति चाहते हैं, पर त्याग करना नहीं चाहते! पुण्यका फल (सुख) चाहते हैं, पर पुण्य करना नहीं चाहते! पापका फल (दुःख) नहीं चाहते, पर पाप करते हैं—

पुण्यस्य फलमिच्छन्ति पुण्यं नेच्छन्ति मानवाः।
न पापफलमिच्छन्ति पापं कुर्वन्ति यत्नतः॥

शान्ति चाहते हो तो मैं-मेरेका त्याग करो। भगवान्‌ने अपरा प्रकृतिको अपना बताया है। जैसे पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाशपर अपना अधिकार नहीं है, ऐसे ही मन, बुद्धि और अहंकारपर भी अपना अधिकार नहीं है। मन, बुद्धि और अहंकार भी अपने नहीं हैं। ये सब भगवान्‌के हैं। भगवान्‌की चीज भगवान्‌को सौंप दें तो स्वतः शान्ति प्राप्त हो जायगी।

अहंकार दो तरहका होता है—प्रकृतिका धातुरूप अहंकार और जड़-चेतनकी ग्रन्थिरूप अहंकार। धातुरूप अहंकार तो परमात्माका है। परन्तु जड़ और चेतनकी एकता माननेसे जो अहंकार होता है, वह अपना माना हुआ है। उस अहंकारमें जड़-अंश प्रकृतिका मिला हुआ है और चेतन-अंश अपना मिला हुआ है। प्रकृतिके अंशको प्रकृतिका मानें और उसमें अपनापन छोड़ दें। फिर स्वतः-स्वाभाविक शान्ति प्राप्त हो जायगी। उसमें अपनापन करना ही बन्धन है।

सब संसार ईश्वररचित है। उसमें अपनापन छोड़ दो तो सब ठीक हो जायगा। उसमें अपनापन रहेगा नहीं, रहनेवाला है ही नहीं। अपनापन छोड़ दो तो निहाल हो जाओगे, और रखोगे तो दुःख पाओगे। **जिस संसारमें हम रहते हैं, उसमें अपनी चीज कोई नहीं है।** अपने केवल भगवान् हैं। जो चीज अपनी नहीं है, उसका सदुपयोग करनेकी हमपर जिम्मेवारी है।

*** *** ***

आप कम जाननेवाले हैं, मैं ज्यादा जाननेवाला हूँ—इस भावसे मैं नहीं कह रहा हूँ। मैंने बहुत दिनोंतक व्याख्यान दिया, अब भाई-बहन साधनमें लग जायँ, परमात्मप्राप्तिमें तत्परतासे लग जायँ—इस भावसे कह रहा हूँ। आप सबसे प्रार्थना है कि सच्चे हृदयसे भगवान्‌में लग जाओ। 'हे नाथ! हे नाथ!'—यह प्रार्थना मेरेको अच्छी लगती है! यह प्रार्थना बड़ी लाभदायक है। चलते-फिरते, उठते-बैठते 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'—यह प्रार्थना करो। प्रभुसे माँगना है तो यही माँगो कि किसी भी अवस्थामें आपको भूलूँ नहीं।

*** *** ***

आज मैं एक विशेष, मार्मिक बात कहता हूँ। हम परमात्माके अंश हैं और स्थूल-सूक्ष्म-कारणशरीर प्रकृतिका अंश है। ये दो बातें आप ठीक तरहसे अलग-अलग समझ लें। यह बात पहले भी कही

थी, पर अब आप विशेष ध्यान दें।

भगवान्‌ने पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा अहंकार—इन आठों को अपनी अपरा प्रकृति (**इतीयं मे**) बताया है (गीता ७। ४)। ऐसे ही जीवको अपनी परा प्रकृति (**मे पराम्**) बताया है, जिसने जगत्‌को धारण कर रखा है (गीता ७। ५)। जगत् न परमात्माकी दृष्टिमें है, न महात्माकी दृष्टिमें है। इस जीवने ही जगत्‌को धारण किया है—'**ययेदं धार्यते जगत्**'। जगत्‌को धारण करनेका तात्पर्य है कि इसने अपरा प्रकृतिके 'मन, बुद्धि और अहंकार' को धारण कर लिया अर्थात् पकड़ लिया है।

पृथ्वीसे सूक्ष्म जल है, जलसे सूक्ष्म तेज है, तेजसे सूक्ष्म वायु है, वायुसे सूक्ष्म आकाश है, आकाशसे सूक्ष्म मन है, मनसे सूक्ष्म बुद्धि है और बुद्धिसे सूक्ष्म अहंकार है। सूक्ष्म होनेपर भी जो पृथ्वीकी जाति है, वही जाति मन, बुद्धि और अहंकारकी है। **जब पृथ्वीको 'मैं और मेरी' नहीं कहते तो फिर मन, बुद्धि और अहम्‌को भी 'मैं और मेरा' मत कहो।** यह बहुत मार्मिक बात है! आप पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाशको तो अपना नहीं कहते, पर मन-बुद्धि-अहम्‌को अपना कहते हैं। यह गलती है। इन सबको भगवान्‌ने अपना कहा है। ये आठों अपरा हैं, आप परा हो। अपरा निकृष्ट है। इस अपराको पकड़ लिया—यही बन्धन है। मन, बुद्धि और अहम् मेरे नहीं हैं। यह अपरा प्रकृति है। आपकी एकता परमात्माके साथ है। भगवान्‌ने जीवको अपना अंश कहा है—'**ममैवांशो जीवलोके**' (गीता १५। ७)। मन-बुद्धि-अहम्‌को भगवान्‌ने अपना अंश नहीं कहा है। अतः अहम् अपने साथ नहीं है।

जैसे पृथ्वी, जल आदि अपना स्वरूप नहीं है, ऐसे ही मन, बुद्धि और अहंकार भी अपना स्वरूप नहीं है। यह खास बात है। अगर इसको भीतरसे स्वीकार कर लो तो शान्तिकी प्राप्ति हो जायगी।

अहम् दो तरहका होता है—१) धातुरूप अहंकार। जैसे पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश धातु हैं, ऐसे मन, बुद्धि और अहम् भी एक धातु है। २) ग्रन्थिरूप अहंकार अर्थात् 'मैं हूँ'। यह खास बन्धन है। धातुरूप अहम् और चेतन (परमात्माका अंश)—दोनों मिलकर यह अहम् है। यह अहम् आपका नहीं है। अहम् 'मैं' भी नहीं है और 'मेरा' भी नहीं है, इसलिये भगवान्‌ने कहा है—'**निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति**' (गीता २। ७१) अर्थात् जो निर्मम और निरहंकार होता है, वह शान्तिको प्राप्त होता है।

ग्रन्थिरूप अहंकार जन्म-मरणका हेतु है। ज्ञान होनेपर जड़-चेतनकी ग्रन्थिरूप अहंकार तो मिट जाता है, पर प्रकृतिका धातुरूप अहंकार नहीं मिटता। धातुरूप अहंकारसे उसके द्वारा व्यवहार होता है।

जैसे मिट्टीका ढेला मैं नहीं हूँ, ऐसे ही मन भी मैं नहीं हूँ, बुद्धि भी मैं नहीं हूँ, अहम् भी मैं नहीं हूँ। यह अपरा प्रकृति है और मैं परमात्माकी परा प्रकृति हूँ। मैं भगवान्‌का अंश हूँ। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार भगवान्‌के अंश नहीं हैं। अतः इनके साथ मेरा सम्बन्ध नहीं है। मनको अपना समझनेसे मन स्थिर नहीं होता। मनको अपना नहीं मानेंगे तो मन अपने-आप स्थिर हो जायगा, बुद्धि अपने-आप स्थिर हो जायगी।

मन अपना नहीं है—यह मान लो तो मन बहुत सुगमतासे वशमें हो जायगा। जबतक मनको अपना समझोगे, तबतक मन चंचल रहेगा। लोग बड़ी शिकायत करते हैं कि मन नहीं लगता! मन लगे कैसे? आपने मनको समझा नहीं! मन ऐसा है कि आप जहाँ जाते हो, मन वहीं चला जाता है। जहाँ आप नहीं जाते, वहाँ मन नहीं जाता। मन खराब नहीं है। मन तो एक इन्द्रिय है, सूक्ष्म अन्तःकरण है। करण कर्ताके अधीन होता है। रेल वहीं जाती है, जहाँ पटरी हो। जहाँ पटरी नहीं है, वहाँ रेल नहीं

जाती। ऐसे ही मन वहीं जाता है, जहाँ आपने सम्बन्ध जोड़ा है। अतः **मन खराब नहीं है, प्रत्युत आप खुद खराब हो!**

जैसे पृथ्वी, जल, तेज आदि अपने नहीं हैं, ऐसे ही मन, बुद्धि, अहंकार भी अपने नहीं हैं। ये सब परमात्माके हैं। जो परमात्माके हैं, उनको आपने अपना मान लिया! राजकीय वस्तुको कोई व्यक्ति अपनी मान ले तो दण्ड मिलता है! इन वस्तुओंको भक्त भगवान्‌को दे देता है, ज्ञानी प्रकृतिको दे देता है और योगी संसारको दे देता है। अपना माननेसे मन अशुद्ध हो जाता है।

पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा अहंकार—इनकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। इनका विवेचन हमलोगोंकी दृष्टिसे किया जाता है। वास्तवमें एक परमात्माके सिवाय कुछ नहीं है—'**वासुदेवः सर्वम्**' (गीता ७। १९)।

*** *** ***

श्रोता—मालासे नामजप करना अच्छा है या रामनाम लिखना अच्छा है?

स्वामीजी—दोनोंमें रामनाम लिखना अच्छा है; क्योंकि उसमें नेत्र भी लग जाते हैं, हाथ भी लग जाते हैं, मन भी लग जाता है। उपासना वह अच्छी है, जिसमें गद्‌गद भाव हो जाय, मन भगवान्‌में तल्लीन हो जाय। चाहे जप करो, चाहे कीर्तन करो, चाहे पाठ करो, जिसमें मन भगवान्‌में ज्यादा लगे, जो प्रेमपूर्वक किया जाय, वह बढ़िया हो जायगा।

श्रोता—आपने रोजाना साढ़े तीन लाख जप करनेकी बात कही थी, वह कैसे सम्भव है? समझमें नहीं आ रहा है!

स्वामीजी—आपसे जितना हो सके, कर लो। खास बात यह याद रखो कि समय खाली न जाय।

श्रोता—नामजपके समय व्यर्थ चिन्तन होता है, उसके लिये क्या करें?

स्वामीजी—बार-बार 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारो। एक मालामें तीन-चार बार प्रार्थना करो कि 'हे नाथ! हे कृपासिन्धो! व्यर्थ चिन्तनसे बचाओ!'। **मन्त्रोंसे भी प्रार्थनामें विशेष शक्ति है।** आर्त होकर भगवान्‌को पुकारो कि 'हे नाथ! मैं अपनी शक्तिसे मिटा नहीं सका! आप कृपा करो'। **भगवान्‌की कृपासे जो काम होता है, वह अपने पुरुषार्थसे नहीं होता।** भगवान्‌की कृपासे बहुत सरलतासे काम हो जाता है। बड़े-बड़े असम्भव काम भी भगवान्‌की कृपासे सम्भव हो जाते हैं। भगवान्‌की कृपाका भरोसा रखकर नामजप करो, सब ठीक हो जायगा।

भगवान् अपने हैं। भगवान्‌के सिवाय कोई अपना नहीं है। भगवान्‌के एक-एक रोममें करोड़ों ब्रह्माण्ड हैं—*'रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड'* (मानस, बाल० २०१)। **करोड़ों ब्रह्माण्डोंमें तिल-जितनी, एक धागे-जितनी चीज भी हमारी नहीं है। पर जिनके रोम-रोममें करोड़ों ब्रह्माण्ड हैं, वे भगवान् पूरे-के-पूरे हमारे हैं!**

*** *** ***

मैं कहूँ और लोग तत्परतासे भगवान्‌में लग जायँ—ऐसी विद्या मेरेको आती नहीं! अगर मेरेको ऐसी विद्या आये तो सबको भगवान्‌में लगा दूँ! आपलोग अगर चाहो तो सब भगवान्‌में लग सकते हो, इसमें कोई सन्देह नहीं है। कारण कि भगवान् हमारे हैं। भगवान्‌पर हमारा अधिकार है। क्यों अधिकार है? क्योंकि हम भगवान्‌के अंश हैं। जैसे अपनी माँको सब-के-सब माँ कह सकते हैं, ऐसे ही सब-के-सब जीव भगवान्‌को अपना परमपिता कह सकते हैं। एक ही माँग हो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। इसके सिवाय दूसरी माँग नहीं रहनी चाहिये। भगवान् यादमात्रसे प्रसन्न हो जाते

हैं—'**अच्युतः स्मृतिमात्रेण**'।

भगवान्‌के सिवाय और कोई हमारा है ही नहीं, और कोई हमारा हुआ ही नहीं, और कोई हमारा होगा नहीं, और कोई हमारा हो सकता नहीं। **प्रकृतिकी जितनी चीजें हैं, सब मिलती हैं और बिछुड़ जाती हैं। परन्तु भगवान् पहलेसे ही मिले हुए हैं और बिछुड़ते हैं ही नहीं! कोई कितना ही दुष्ट हो, कितना ही पापी हो, कितना ही अन्यायी हो, कितना ही घातक हो, कितना ही क्रूर हो, कितना ही नृशंस हो, भगवान् उसको छोड़ते नहीं। सदा उसके साथ रहते हैं। ऐसा और कौन है, बताओ?** थोड़ा अवगुण हो तो उसको सब छोड़ देते हैं, माँ-बाप छोड़ देते हैं, भाई छोड़ देते हैं, सम्बन्धी छोड़ देते हैं, कुटुम्बी छोड़ देते हैं, पड़ोसी छोड़ देते हैं, पर भगवान् नहीं छोड़ते! अतः सबके साथ रहनेमें, शक्तिमें, महिमामें, कृपा करनेमें भगवान्‌के समान कोई नहीं है! वे प्राणिमात्रके परम सुहृद् हैं—'**सुहृदं सर्वभूतानाम्**' (गीता ५। २९)। ऐसे प्रभुको भी याद नहीं रखते तो किसको याद रखोगे? ऐसे भगवान्‌पर विश्वास नहीं करोगे तो किसपर विश्वास करोगे? संसार विश्वास करनेलायक नहीं है। जो चीज मिलती है और बिछुड़ जाती है, उसपर विश्वास कैसे हो? इसलिये भगवान्‌को अपना मान लो। जैसे, मीराबाईने कहा—'***मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई***'। किसी-न-किसीको अपना मानना ही पड़ेगा, यह बिल्कुल सच्ची बात है। जब किसी-न-किसीको अपना मानना ही पड़ेगा तो जो सबसे श्रेष्ठ है, कभी हमसे अलग नहीं होगा, उसको ही अपना मानो। आजतक हमारे कितने जन्म हुए, कैसे-कैसे शरीर मिले, पर कोई शरीर ठहरा नहीं, कोई सम्बन्ध ठहरा नहीं, पर भगवान्‌का सम्बन्ध कभी टूटा नहीं!

*** *** ***

श्रोता—गीतामें आया है कि जीवने जगत्‌को धारण कर रखा है—'**ययेदं धार्यते जगत्**' (गीता ७। ५), तो यह धारण करना क्या है और यह धारण करना कैसे मिटे?

स्वामीजी—यह जगत् केवल जीवकी कल्पना है। परमात्माकी दृष्टिमें जगत् नहीं है और परमात्माको प्राप्त हुए महापुरुषोंकी दृष्टिमें भी जगत् नहीं है। महापुरुषोंकी दृष्टिमें सब कुछ परमात्मा ही है—'**वासुदेवः सर्वम्**' (गीता ७। १९)। स्वप्नमें भी जगत्‌का नामोनिशान नहीं है! जगत् है ही नहीं, हुआ ही नहीं, होगा ही नहीं, हो सकता ही नहीं! यह एकदम पक्की, सच्ची बात है। केवल जीवने ही जगत्‌को धारण कर रखा है। भगवान् कहते हैं—'**मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय**' (गीता ७। ७) अर्थात् मेरे सिवाय किंचिन्मात्र भी कुछ नहीं है, केवल मैं-ही-मैं हूँ। केवल जीवने संसारकी कल्पना कर रखी है। संसार केवल राग-द्वेषके कारण है।

भगवान्‌की तरफ चलनेवालोंकी तीन धारणाएँ होती हैं। पहली बात, सब कुछ भगवान्‌का ही है। सबके मालिक भगवान् हैं। सब भाई-बहन कृपा करके यह धारण कर लो कि सब कुछ केवल भगवान्‌का है, अन्य किसीका नहीं है। दूसरी बात, यह सब केवल भगवान् ही हैं। तीसरी बात इससे विलक्षण है, उसका वर्णन नहीं कर सकते! इतना कह सकते है कि सिवाय परमात्माके कोई चीज कभी पैदा हुई ही नहीं, होगी ही नहीं, हो सकती ही नहीं। वह कैसे है, उसका वाणीसे वर्णन नहीं कर सकते। तीसरी बात होनेपर पूर्णता हो जाती है।

जैसे भूखा अन्न चाहता हो, प्यासा जल चाहता हो, ऐसा तो मैं नहीं कह सकता, पर मेरी चाहना जरूर है कि इस बातको आप मान लें कि सब कुछ भगवान्‌का है। अगर आप भगवान्‌की प्राप्ति चाहते हो तो सबसे पहले यह बात धारण करनी चाहिये कि मेरी चीज कोई नहीं है। '**मैं**' **भी मेरा नहीं है, प्रत्युत भगवान्‌का है!** यह पहली बात है। इसीसे श्रीगणेश होना चाहिये। यह शरीर, मन, वाणी, इन्द्रियाँ, प्राण आदि सब भगवान्‌के ही हैं—यह आरम्भमें ही होना चाहिये।

मन-बुद्धि हमारे नहीं हैं, इन्द्रियाँ हमारी नहीं हैं, प्राण हमारे नहीं हैं, जीवन हमारा नहीं हैं, स्थूलशरीर हमारा नहीं है, सूक्ष्मशरीर हमारा नहीं है, कारणशरीर हमारा नहीं है—यह बात होते ही कामवृत्ति नष्ट हो जायगी अर्थात् रुपयोंमें और स्त्रीमें आकर्षण मिट जायगा! ये दो ही साधकके लिये महान् बाधक हैं—

माधोजी से मिलना कैसे होय।
सबल बैरी बसै घट भीतर, कनक कामिनी दोय॥

पहले 'मेरा कुछ नहीं है'—इस बातको पक्का करो। यह बात ठीक जँच जायगी तो 'मेरेको कुछ नहीं चाहिये'—यह बात बड़ी सुगम हो जायगी। 'मेरेको कुछ नहीं चाहिये'—यह होनेपर फिर 'मैं कुछ नहीं'—यह सुगमतासे हो जायगा। 'मैं कुछ नहीं'—यह बात होनेपर फिर 'सब कुछ भगवान् ही हैं'—यह बहुत सुगम हो जायगा।

ये बातें मान लो तो मैं आपका ऋणी हूँ! आपका दास हूँ! आपका गुलाम हूँ! आप कृपा करके इन बातोंको मान लो।

*** *** ***

आप दुःख तो नहीं चाहते, पर उसके कारणकी खोज नहीं करते। अगर दुःखके कारणका निवारण कर दिया जाय तो दुःख नहीं होगा। दुःखका कारण है—बेईमानी। **जो अपनी चीज नहीं है, उसको अपनी मान लेते हैं—यह बेईमानी है। इस बेईमानीसे दुःख होता है।** जो चीज अपनी नहीं है, वह अपने पास ठहरेगी नहीं—यह नियम है। हमें तो सुननेमें और कहनेमें यह बात बहुत बढ़िया मालूम देती है कि जो चीज मिलती है और बिछुड़ जाती है, वह हमारी नहीं होती। प्रकृतिकी सम्पूर्ण चीजें मिलती हैं और बिछुड़ जाती हैं, पर परमात्मा मिले हुए ही रहते हैं, बिछुड़ते हैं ही नहीं। वे परमात्मा हमारे हैं। यह बात खास है! मिलने और बिछुड़नेवाली चीजको आप बेशक अपनी मान लो, पर वह आपके पास नहीं रहेगी, नहीं रहेगी, नहीं रहेगी! फिर उसका दुःख क्यों करो?

अंतहुँ तोहिं तजैंगे पामर तू न तजै अबही ते॥
मन पछितैहै अवसर बीते। (विनयपत्रिका १९८। ३)

मिली हुई चीज केवल संसारकी सेवाके लिये है। उसको अपनी नहीं मानो और संसारकी सेवा करो तो कल्याण हो जायगा, मुक्ति हो जायगी।

जो कुछ देखनेमें, सुननेमें, समझनेमें आता है, वह सब कुछ भगवान्का है। यह पहली बात है। उसको अपना न मानकर भगवान्का मानो तो आपका साधन शुरू हो गया। उसको अपना मानो तो साधन शुरू नहीं हुआ। दूसरी एक मार्मिक बात है कि सांसारिक वस्तुएँ हमारे लिये भी नहीं हैं। ये भगवान्की हैं और भगवान्के लिये हैं। हमारी नहीं हैं और हमारे लिये भी नहीं हैं—ये दो बातें मान लो, फिर सब काम ठीक हो जायगा। मूलमें सब संसारके मालिक भगवान् हैं। भगवान्की चीजोंको आप अपनी क्यों मानते हो? राजकीय चीजपर कोई कब्जा करता है, उसको दण्ड होता है। वे चीजें आपको उपयोग करनेके लिये मिली हैं। जैसे, यह पण्डाल आपको बैठकर सत्संग करनेके लिये दिया हुआ है, अपना व्यक्तिगत नहीं है। यह भगवान्का है, हमारा नहीं है।

*** *** ***

श्रोता—ध्यान भगवान्के मुखारविन्दका करना चाहिये या चरणोंका करना चाहिये?

स्वामीजी—भावके अनुसार अलग-अलग ध्यान होगा। अगर भगवान्में पुत्रभाव हो तो मुखका ध्यान

अपने-आप होगा। अगर दास्यभाव हो तो चरणोंका ध्यान होगा ही। आपको भगवान्‌का मुख अच्छा लगता है या चरण अच्छे लगते हैं? अगर मुख अच्छा लगे तो पुत्रभाव है। अगर चरण अच्छे लगें तो दास्यभक्ति है। चरणोंका ध्यान करना सबसे बढ़िया है। चरणोंमें विष्णु भगवान् विराजते हैं।

*** *** ***

श्रोता—सब कुछ भगवान्‌का है और सब कुछ भगवान् ही हैं—ये दो बात है या एक बात है? दो बात है तो इनमें क्या अन्तर है?

स्वामीजी—'सब कुछ भगवान्‌का है'—यह पहली सीढ़ी है। दूसरी सीढ़ी है—'सब कुछ भगवान् ही हैं'। इसके आगे है—एक भगवान्‌के सिवाय कुछ हुआ ही नहीं। सबसे पहले यह मान लेना चाहिये कि सब कुछ भगवान्‌का है, भगवान् सबके मालिक हैं।

श्रोता—स्मृतिका क्या स्वरूप है?

स्वामीजी—स्मृतिका स्वरूप है—भूल मिटना। भगवान्‌को भूल गये। अरे! सब कुछ भगवान् ही हैं—यह स्मृति है।

श्रोता—प्रेम और स्मृतिमें क्या सम्बन्ध है?

स्वामीजी—स्मृतिके बाद प्रेम हो जाता है। भगवान् मेरे हैं; भगवान्‌के सिवाय और कोई मेरा नहीं है—यह स्मृति हो गयी। इसके बाद भगवान्‌में प्रेम हो जाता है।

*** *** ***

श्रोता—मेरा नाम-स्मरणमें बड़ा मन लगता है, लेकिन लीला-चिन्तन बड़ा कठिन पड़ता है, क्या करूँ?

स्वामीजी—कोई हर्ज नहीं, नामजप ही करो। जिसमें आपका मन लगे, वह साधन बढ़िया होता है। जो स्वतः होता है, वह बढ़िया होता है। **बलपूर्वक किया हुआ साधन बढ़िया नहीं होता।**

श्रोता—भण्डारेमें भोजन करते हैं तो भण्डारा करवानेवालेका पाप हमें लगता है क्या?

स्वामीजी—भण्डारा बढ़िया नहीं है; क्योंकि सकामभावसे करते हैं। लोग मृत्यु-समयमें निकाल देते हैं, खराब भावसे निकाल देते हैं, इसलिये वह अन्न अच्छा नहीं है। वह अन्न बाधा देता है।

*** *** ***

जीवका कल्याण होगा संसारका सुख छोड़नेसे।

कबीर मनुआँ एक है, भावे जिधर लगाय।
भावे हरि की भगति करे, भावे विषय कमाय॥

संसारके विषयोंमें लगोगे तो भगवान्‌का भजन नहीं होगा, और भजनमें लगोगे तो विषयभोग नहीं होगा। मनको चाहे भगवान्‌में लगा दो, चाहे संसारमें लगा दो, आपकी मरजी है। **अगर संसारका सुख लेना हो तो भगवान्‌की आशा छोड़ दो, और भगवान्‌का भजन करना हो तो संसारकी आशा छोड़ दो।** ये दोनों परस्परविरोधी हैं; क्योंकि संसार नाशवान् है और भगवान् अविनाशी। नाशवान्‌में लगोगे तो अविनाशी कैसे मिलेगा?

एक विलक्षण बात है कि क्रियासे परमात्माकी प्राप्ति नहीं होती। क्रियासे संसारकी प्राप्ति होती है। जो सर्वव्यापक है, उसके लिये क्रियाकी क्या आवश्यकता? क्रियासे उसकी प्राप्ति कैसे होगी? **जहाँ आप 'मैं हूँ' कहते हो, वहाँ परमात्मा पूरे-के-पूरे हैं।** फिर उसकी प्राप्तिके लिये कहाँ जाओगे? क्रियासे

तो उल्टे परमात्मासे दूर हो जाओगे! जो चीज सब जगह होती है, उसको प्राप्त करनेके लिये कहीं जाना नहीं पड़ता। जहाँ आप हो, वहीं मिल जायगा। केवल प्राप्तिकी जोरदार इच्छा होनी चाहिये।

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥

(मानस बाल० १८५। २)

*** *** ***

श्रोता—व्यर्थ चिन्तनकी आदत कैसे मिटे?

स्वामीजी—एक ही उपाय है—भगवान्‌को पुकारो। यह उपाय सब चीजोंमें लागू होता है। जहाँ हमें कठिनता पड़ती हो, 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!'—ऐसे भगवान्‌को पुकारो। उनकी कृपासे जो काम होता है, वह अपने उद्योगसे नहीं होता।

श्रोता—महात्मालोग ब्याजकी कमाईको पवित्र नहीं मानते, पर मेरे घरमें ब्याजकी कमाई आती है, क्या करें?

स्वामीजी—कमाईका दूसरा साधन न हो तो आपत्काल समझकर ले सकते हैं, नहीं तो विधवा आदि अपना निर्वाह कैसे करें! व्यापारमें जो रुपये रह जायँ, उनके ब्याजका इतना दोष नहीं है, पर केवल ब्याजकी कमाई बढ़िया नहीं है।

*** *** ***

श्रोता—मेरे इष्ट हनुमान्‌जी हैं तो मैं भगवान्‌की शरणागति लूँ या हनुमान्‌जीकी शरणागति लूँ? कौन-सी ठीक है?

स्वामीजी—हनुमान्‌जी भगवान्‌के भक्त हैं। भक्तकी शरणागति भी भगवान् अपनेसे कम नहीं मानते। बहुत कृपा करते हैं! मूलसे ब्याज प्यारा होता है! बेटेसे पोता प्यारा होता है!

श्रोता—आपकी बात समझमें आती है, पर अनुभव नहीं हो रहा है!

स्वामीजी—भगवान्‌की कृपासे अनुभव हो जायगा—यह विश्वास रखो। भगवान्‌की कृपाका भरोसा रखो। कारण कि आपने सच्ची बातको मान लिया, तो सच्ची बात सिद्ध होगी ही। आप सच्ची बातको स्वीकार कर लो, अनुभव हो जायगा।

श्रोता—आजकल ब्याह-शादीमें खड़े-खड़े खाते हैं, यह ठीक है या गलत है?

स्वामीजी—बिल्कुल बेठीक है। कोरी मूर्खता भरी है! आजकल मूर्खता बढ़ रही है! यह कलियुगकी लीला है! कलियुगकी लीलामें प्रवेश मत करो। हमारे शास्त्रोंने बुद्धको अवतार माना है, पर बुद्धकी बातको नहीं माना है। गीताने कहा है—'**तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ**' (गीता १६। २४) 'कर्तव्य-अकर्तव्यकी व्यवस्थामें शास्त्र ही प्रमाण है'। शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार चलो तो बहुत लाभ होगा।

कलियुगके समयमें आप सत्संगमें आ गये—यह मामूली बात नहीं है! यह बड़ी श्रेष्ठ, बड़ी उत्तम बात है! अगर यह मान लो कि सब कुछ भगवान् ही हैं तो निहाल हो जाओगे! ऐसी विलक्षण, अलौकिक बातें हरेक जगह मिलती नहीं हैं! आप कई जगह सत्संगमें जाओ तो आपको पता लगे! जड़-चेतनका ठीक तरहसे विवेक हरेक जगह नहीं मिलता! **जो इस सत्संगकी तात्त्विक बातोंको ठीक समझेगा, वह दूसरी जगह ठहर सकेगा नहीं!**

गीता-जैसा ग्रन्थ आपको कहीं मिलेगा नहीं। लोग जानते नहीं! टीका करते हैं गीताजीकी, पर

बात करते हैं अपने सम्प्रदायकी! पहले सम्प्रदायके ग्रन्थ पढ़कर फिर गीता पढ़ागे तो गीता समझमें नहीं आयेगी। '**वासुदेवः सर्वम्**' की बात कितनी जगह मिलती है, आप ढूँढ़कर देख लो! ऐसा मौका मिलता नहीं है! आप जगह-जगह भटको तो पता लगे! उपनिषदोंमें आया है कि ऐसी बातें सुननेको भी नहीं मिलतीं—'**श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः**' (कठोपनिषद् १। २। ७)। ऐसी विचित्र बातें भगवान्‌की कृपासे ही मिलती हैं, अपने उद्योगसे नहीं। अभी पता नहीं लगता। समय बीतनेपर पता लगेगा! मेरेपर एक असर है कि भगवान्‌की कोई विलक्षण ही कृपा है! भगवान्‌की जितनी कृपा है, ऐसी योग्यता हमारेमें नहीं है।

*** *** ***

यह जो बात आपको कही है, इस बातपर आप ध्यान दो। किसी सन्तके, किसी महात्माके किसी विवेचनमें यह आया है कि तुम इनको भगवान्‌का स्वरूप समझो? यह बात नयी है! '***सब जग ईस्वररूप है***'—यह तो सभी कहते हैं, पर इनमें परमात्माका रूप देखो—ऐसा किसी महात्माने कहा हो तो बताओ? सब जगत् परमात्माका स्वरूप है—यह बात तो प्रसिद्ध है, पर आप अभी इस संसारको परमात्माका स्वरूप समझो—यह बात किसी महात्माने, किसी ग्रन्थने कही हो, यह हमें याद नहीं है। आपको नयी बात बताते हैं, पर आप ध्यान नहीं देते!

यहाँ वटवृक्षके नीचे एक आदमीने सेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका)-से कहा कि आप मेरेको भगवान्‌के दर्शन कराओ। सेठजीने कहा कि मेरी सामर्थ्य नहीं है कि दर्शन करा दूँ। उसने ज्यादा कहा तो सेठजी बोले कि मेरी बात आप मान लोगे? उसने कहा कि हमारा आपपर विश्वास है कि आप झूठ नहीं बोलते। सेठजीने सूर्यकी ओर संकेत करते हुए कहा कि ये साक्षात् परमात्मा हैं। वह आदमी बोला कि ये तो हम देखते ही हैं! सेठजी बोले कि तभी तो मैंने कहा कि तुम विश्वास नहीं करोगे। सूर्य भगवान् हैं—यह शास्त्रोंमें आया है कि नहीं, बताओ? शंकर, शक्ति, गणेश, विष्णु और सूर्य—ये पाँच ईश्वरकोटिके देवता हैं। ये साक्षात् ईश्वर हैं। आप मानो नहीं तो हम क्या करें? उपनिषदोंमें आया है कि मैं एक ही बहुत रूपोंसे हो जाऊँ—'**सदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति**' (छान्दोग्य० ६। २। ३) तो बहुत रूपसे कौन हुआ?

जगत् साक्षात् परमात्माका स्वरूप है—यह बात बहुत आयी है, पर ऐसा किसीने कहा है कि इसको साक्षात् परमात्माका स्वरूप देखो, साक्षात् परमात्मा ही मानो? इतनी बात पता लग जाय तो आदमी रात-दिन 'ये भगवान् हैं! ये भगवान् हैं! ये भगवान् हैं!'—इसकी रटनमें लग जाय! अगर विश्वास हो जाय तो आदमी पागल हो जाय! इतनी सीधी-सरल बात कहाँ मिलती है? इसका वही माहात्म्य है, जो भगवान्‌के दर्शनका माहात्म्य है! **भूख लगे तो भोजन कर लो, प्यास लगे तो जल पी लो, नींद आये तो सो जाओ, और हरेक वस्तु-व्यक्तिमें 'ये भगवान् हैं! ये भगवान् हैं! ये भगवान् हैं!'—इसकी रात और दिन रटन लगाओ, पीछे ही पड़ जाओ। भगवान् प्राप्त हो जायँगे! आप करके तो देखो!**

*** *** ***

श्रोता—मेरे द्वारा किसी व्यक्तिका घोर अपराध हो गया, पर उस व्यक्तिसे क्षमा माँगनेकी मेरी हिम्मत नहीं है, क्या करूँ?

स्वामीजी—आप मनसे क्षमा माँग लो। सुबह-शाम दोनों वक्त मनसे उसकी परिक्रमा करके नमस्कार कर लो और क्षमा माँग लो। मिलनेकी कोई जरूरत नहीं है। कुछ दिनोंके बाद देखो तो उसका मन बदल जायगा।

श्रोता—द्वादशाक्षर मन्त्र जपते-जपते मेरी विलक्षण स्थिति हो गयी थी, पर अब वह स्थिति वापिस नहीं आती! क्या करना चाहिये?

स्वामीजी—लोगोंको कह देनेसे भी बाधा लग जाती है। अतः ऐसी बात किसीको कहनी नहीं चाहिये। माफी माँगो और भजन करो। भगवान्‌की कृपासे ठीक हो जायगा।

श्रोता—नामजप श्रेष्ठ है या सेवा? नामजप करते हैं तो सेवा नहीं होती और सेवा करते हैं तो नामजप नहीं होता!

स्वामीजी—यह बात हम नहीं मानते! नामजप करनेसे सेवाको पुष्टि मिलती है और सेवा करनेसे नामजपमें रुचि होती है। दोनों एक-दूसरेके सहायक हैं, बाधक नहीं।

श्रोता—हम अपनी कमाईका आधा हिस्सा निकालते हैं, तो वह अपने घरकी लड़कीके विवाहमें लगा सकते हैं क्या?

स्वामीजी—दहेजमें न देकर अलगसे दे सकते हो। बहन-बेटी ब्राह्मणकी तरह होती है।

*** *** ***

सबकी अलग-अलग दृष्टियाँ हैं। जैसे, एक स्त्री-शरीर हो तो उसको सिंह भोजनके रूपमें देखता है, पुरुष स्त्रीके रूपमें देखता है, बालक माँके रूपमें देखता है। स्त्री तो एक ही है, पर दृष्टियाँ अलग-अलग हैं। ऐसे ही संसारको भी सब एक रूपसे नहीं देखते, प्रत्युत अलग-अलग दृष्टिसे देखते हैं। परन्तु **सब दृष्टियोंमें वास्तविक दृष्टि यह है कि संसार परमात्माका स्वरूप है। इससे ऊँची कोई दृष्टि नहीं है। अगर इसी ऊँची दृष्टिसे हम देखें तो संसार परमात्माकी प्राप्तिका खास कारण है, मुक्तिका खास धाम है! इसका दर्शन करनेमात्रसे कल्याण हो जाय!**

संसारको देखना ही हो तो ऊँची दृष्टिसे देखो। देखनेमें हम स्वतन्त्र हैं, परतन्त्र नहीं हैं। मनुष्य ऊँची-से-ऊँची दृष्टिसे भी देख सकता है और नीची-से-नीची दृष्टिसे भी। जब देखनेमें हम स्वतन्त्र हैं तो फिर देखनेमें कमी क्यों रखें? मनके लड्डूमें खाँड़ कम क्यों! घी भी कम क्यों! इसमें कौन-सा खर्च होता है! इसको आप कठिन मत समझो। ऐसी दृष्टि मनुष्य नहीं करेंगे तो क्या पशु-पक्षी करेंगे? **मनुष्यके सिवाय ऐसी दृष्टि करनेकी ताकत देवताओंमें भी नहीं है!**

संसारको परमात्मदृष्टिसे देखेंगे तो इससे हमारा कल्याण होगा तथा दुनियाका भी बड़ा उपकार होगा! सबका लाभ होगा, नुकसान किसीका भी नहीं होगा।

*** *** ***

सत्संग करनेसे अपनेमें विलक्षणता आती है—ऐसा हरेकको स्वीकार करना ही पड़ता है। सत्संग करनेसे स्वभावमें फर्क पड़ता है, यह मेरा अनुभव है। मनुष्य रुपयोंसे बड़ा नहीं होता, प्रत्युत स्वभावसे बड़ा होता है, और स्वभाव बदलता है सत्संगसे। लाखों-करोड़ों रुपये हो जायँ तो भी कंजूसी नहीं मिटती, पर सत्संगसे कंजूसी मिट जाती है। सत्संग करनेसे दृष्टि बदल जाती है। दृष्टि बदलनेसे सब-की-सब सृष्टि बदल जाती है।

सत्संगसे फर्क जरूर पड़ता है, तभी मैं आपको बातें बतानेमें मेहनत करता हूँ! नहीं तो क्यों मेहनत करूँ? बोले बिना मैं रह नहीं सकता—ऐसी बात नहीं है। मैं चुपचाप भी रह सकता हूँ! जब मैं (संवत् १९८९-१९९० में) वृन्दावनमें था, तब एक सन्त बोले कि तुम इतना बोलनेवाले चुप कैसे रह जाते हो? पहले मैं बहुत बोलता था। आठ घण्टा, दस घण्टा, पन्द्रह घण्टा बोलता (व्याख्यान देता) था! अतः सत्संगसे स्वभाव बदलता है, यह मैंने अनुभव किया है। मेरा तो ऐसा विश्वास है

कि सत्संग करनेसे आपका जीवन बदल जायगा। सत्संग सुननेसे आदमीका स्वभाव बदलता है, शान्ति मिलती है, आनन्द मिलता है, दुःख मिटता है, सन्ताप मिटता है। रुपये ज्यादा होनेसे फर्क नहीं पड़ता। अधिक पैसेवाला खर्च नहीं कर सकता—***'जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई'*** (मानस, बाल० १८०। १; लंका० १०२। १)। जिसके पास अरबों रुपये हैं, वह लाख-दो लाख रुपये भी खर्च नहीं कर सकता। परन्तु सत्संग करनेसे फर्क पड़ता ही है, कोई माने, चाहे न माने। अपने स्वभावको बदलनेमें सब स्वतन्त्र हैं, कोई परतन्त्र नहीं है। सत्संगसे एक पैसा मिलता नहीं, पर स्वभाव शुद्ध हो जाता है—यह नियम है। धनी आदमियोंका चेहरा बढ़िया नहीं होता। चेहरा देखते ही भय लगता है! परन्तु सत्संग करनेवालेको देखनेसे शान्ति मिलती है! इसलिये कहा है—***'संत समागम करिये भाई। और उपाय नहीं तिरने का, सुन्दर काढिहि राम दुहाई॥'***। भगवान् जब कृपा करते हैं, तब सत्संग देते हैं। **भगवद्गीता और सन्त—ये दोनों भगवान्‌की कृपासे मिलते हैं, उद्योगसे अथवा भाग्यसे नहीं मिलते।** जिसपर भगवान् कृपा करते हैं, उसको ये मिलते हैं, हरेकको नहीं मिलते।

*** *** ***

श्रोता—आप कहते हैं कि भगवान्‌से मिलनेकी लगन, लालसा बढ़ाओ, पर जब भगवान् सब जगह हैं ही तो फिर लालसा बढ़ानेसे क्या लाभ?

स्वामीजी—गायके भीतर घी होता है, पर वह काम नहीं आता। घी निकालकर दिया जाय तो काम आता है। ऐसे ही भगवान् सब जगह होते हुए भी काम नहीं आते। उनसे मिलनेकी लालसा बढ़नेपर वे काम आयेंगे। इसलिये मैं लालसा बढ़ानेके लिये कहता हूँ।

*** *** ***

श्रोता—भजन एकान्तमें करना ठीक है या समूहमें? समूहमें भजनका ध्यान कम रहता है, बाहरका ध्यान ज्यादा होता है।

स्वामीजी—एकान्तमें करनेका आशय यह है कि भजनमें दिखावटीपन नहीं होना चाहिये। 'मेरेको लोग भजनानन्दी समझें'—यह भाव बिल्कुल नहीं होना चाहिये। अगर एकान्तमें, दरवाजा बन्द करके भजन करनेपर भी मनमें भाव यह रहे कि लोग मेरेको भजनानन्दी समझें, लोगोंपर असर पड़े कि यह भजन करनेवाला है, तो यह एकान्त नहीं हुआ। **लोग तो अपने रुपयोंको भी प्रकट नहीं करते, जो कि बाहरकी पूँजी है। भजन तो अन्तःकरणकी पूँजी, साथमें चलनेवाली पूँजी है। इसको प्रकट क्यों करें? किसीको रुपये मिल जायँ तो वह किसीको बताता नहीं, पर मन-ही-मन प्रसन्न होता है, ऐसे ही भगवान्‌के भजनका आनन्द आना चाहिये। दिखावटीपना भगवान्‌का भजन नहीं है।**

लोग मेरेको सन्त समझें, भक्त समझें—ऐसा भाव वास्तवमें भगवान्‌का भजन नहीं है, प्रत्युत लोगोंका भजन है। आज त्योहार है तो लोग ज्यादा आयेंगे—इस भावसे ठाकुरजीको बढ़िया सजाते हैं, तो यह ठाकुरजीका पूजन नहीं हुआ, प्रत्युत लोगोंका पूजन हुआ।

एक राजा-रानी थे। रानी बहुत भजन करती, दान-पुण्य करती, ब्राह्मण-भोजन कराती। परन्तु राजा कुछ नहीं कहते, न मना करते, न अनुमोदन करते। रानीके मनमें आया कि राजाके भी मनमें भाव हो जाय, ये भी भगवान्‌में लग जायँ तो बड़ा अच्छा है! एक दिन राजा सोये हुए थे। सहसा वे नींदमें ही 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' पुकारने लग गये। सुबह होनेपर रानीने बड़ा उत्सव मनाया कि आज रात तो महाराजको भगवान् याद आ गये! राजाने पूछा कि क्या बात है? रानीने कहा कि आज रात नींदमें आपके मुखसे भगवान्‌का नाम निकला! राजाने कहा कि क्या मुँहसे भगवान्‌का नाम निकल

गया? यह कहते ही राजाके प्राण निकल गये! तात्पर्य है कि हमारे भजनको या तो हम जानें, या भगवान् जानें, दूसरेको पता ही न लगे।

राम नाम की संतदास, दो अन्तर धक धूण।
या तो गुपती बात है, कहो बतावे कूण॥

लोगोंको रिझानेसे क्या फायदा है? आप कथा, सत्संग, भजन आदि लोगोंको राजी करनेके लिये करते हैं और लोग वाह-वाह कर देते हैं, बस, *'खेल खतम, पैसा हजम'!* वाह-वाहमें सब उड़ गया!

*** *** ***

श्रोता—परमात्माकी प्राप्तिमें भविष्यकी अपेक्षा नहीं है, कैसे?

स्वामीजी—जो वस्तु दूर हो, उसके लिये रास्ता होता है। सर्वव्यापक वस्तुके लिये रास्ता नहीं होता। उसकी प्राप्तिमें क्रिया भी कारण नहीं होती। परमात्मा सब जगह समान रीतिसे परिपूर्ण हैं। जहाँ आप हो, वहाँ परमात्मा पूरे-के-पूरे हैं। उनके समान सर्वव्यापक वस्तु कोई है ही नहीं। वे केवल चाहनासे मिल जाते हैं। संसारकी कोई चीज चाहनामात्रसे नहीं मिलती, पर परमात्मा चाहनामात्रसे मिलते हैं। जैसे परमात्मा अद्वितीय हैं तो उनकी चाहना भी अद्वितीय होनी चाहिये। **एक परमात्माके सिवाय दूसरी कोई चाहना न हो तो परमात्माकी प्राप्ति हो ही जायगी। कोई भी चाहना मत रखो तो परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी।**

चाह चूहड़ी रामदास, सब नीचों में नीच।
तू तो केवल ब्रह्म था, चाह न होती बीच॥

आप कुछ भी चाहना मत रखो, अगर परमात्माकी प्राप्ति न हो तो मेरा कान पकड़ना!

*** *** ***

गोस्वामीजी महाराजने रामायण लिखी तो सबसे पहले नमस्कार किया। उसमें उन्होंने गुरुजीको जो नमस्कार किया, उस सोरठेमें भी विलक्षणता है। पहलेके सभी सोरठोंके अन्तमें ***'बदन, सदन', 'गहन, दहन', 'नयन, सयन'*** और ***'अयन, मयन'*** शब्द आये हैं, पर गुरु-वन्दनामें ***'हरि, निकर'*** शब्द आये हैं—

बंदउँ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर॥

(मानस, बाल० ५)

ऐसा पहलेके किसी सोरठेमें नहीं आया है। तात्पर्य है कि जिससे ज्ञान मिला है, उस गुरुके बराबर कोई नहीं है। गोस्वामीजी मामूली कवि नहीं थे। जिनसे लाभ हुआ है, उनके प्रति उनकी कितनी कृतज्ञता है! सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दका रोजाना स्नान एवं नित्यकर्म करनेके बाद बैठकर नाड़ीजप करते थे; क्योंकि नाड़ीजपसे उनको लाभ हुआ था। सेठजीके पिता खूबचन्दजीकी बात सुनी कि उनकी बूढ़ी दादीजी थीं। ज्यादा चलना-फिरना न होनेसे वे प्रायः खाटपर बैठी रहतीं। खूबचन्दजी रोजाना खाटकी परिक्रमा करके माँजीको दण्डवत् करके नमस्कार करते थे। तात्पर्य है कि माँ-बापका और गुरुका जो आदर करेगा, उसका आदर होगा। उसमें विलक्षणता आयेगी। माँ-बापके प्रति, गुरुके प्रति, पूज्यजनोंके प्रति जितना अधिक भाव होगा, उतना लाभ होगा ही।

*** *** ***

श्रोता—मेरे एक भाईका तो देहान्त हो गया और एक भाई बीमार रह रहा है! इससे मनमें बड़ी

अशान्ति है, बड़ा दु:खी हूँ, क्या करना चाहिये?

स्वामीजी—भाईको सच्चे हृदयसे भगवान्‌के अर्पण कर दो। उसमें मोह, अपनापन मत रखो। वह जीये तो भगवान्‌का, मरे तो भगवान्‌का! चिन्ता करे तो भगवान् करे! रोये तो भगवान् रोये! मैं क्यों रोऊँ? हृदयसे उसको भगवान्‌को दे दो तो इसमें उसका कल्याण है। मोह रखनेसे आपका भी नुकसान है, उसका भी नुकसान है। भगवान्‌को दे दो तो आपको भी फायदा और उसको भी फायदा।

सच्ची बात यही है कि सब भगवान्‌के हैं। हमने अपना मान रखा है, वास्तवमें अपना है नहीं, अपना था नहीं, अपना रहेगा नहीं, अपना हो सकता नहीं। भाई जन्मसे पहले अपना था क्या? अगर अभी अपना है तो उसको बचा लो। अपना है तो अपना वश चलता है क्या? क्या वह सदा अपना रहेगा? अपना रह सकता ही नहीं। फिर चिन्ता किस बातकी? आप भाईकी बात कहते हैं, यह शरीर भी अपना नहीं है! क्या आप शरीरको अपनी मरजीके मुताबिक रख सकते हो? मरजीके मुताबिक नहीं रख सकते तो फिर वह अपना कैसे?

श्रोता—गायको जूठा भोजन दे सकते हैं कि नहीं?

स्वामीजी—गायको जूठन नहीं देना चाहिये। ठण्डी रोटी भी नहीं देनी चाहिये। देनी वह चीज चाहिये, जो आप खा सकते हो। जो आप नहीं खा सकते, वह देनेका अधिकार नहीं है। उसको बाहर रख दो, चाहे कोई खाये। लोग रद्दी चीजका दान करते हैं। क्या खेतमें रद्दी बीज बोते हो?

*** *** ***

ज्ञान भगवान्‌का है, किसी व्यक्तिका नहीं। वह ज्ञान जिससे मिले, उसको गुरु मान लो। जैसे, भगवान्‌के नामका जप करना चाहिये—यह ज्ञान हमें जिस व्यक्ति अथवा पुस्तकसे हुआ, वह हमारा गुरु हो गया, चाहे आप जानें या न जानें, मानें या न मानें। बनाये हुए गुरुसे कल्याण नहीं होता।

आप ऋषिकेशसे अपनी गाड़ीकी लाइट करो तो हरिद्वार दीखेगा नहीं। परन्तु जितना रास्ता दीखे, उतना चलना शुरू कर दो तो हरिद्वार पहुँच जाओगे। इसी तरह आपको जितना ज्ञान हो, उसके अनुसार चलना शुरू कर दो तो परमात्मातक पहुँच जाओगे।

मैं गुरु बनता नहीं हूँ, पर जो बात गुरु बताता है, वही तो मैं बताता हूँ! वह बात बताता हूँ, जो गुरु भी न बताये! अगर आप सच्चे हृदयसे भगवान्‌में लग जाओ तो भले ही मुझे गुरु मान लो! न आपको कोई बाधा है, न मुझे! गुरु जो बात बतायेगा, उससे कम नहीं बताऊँगा! गुरुका अभाव मत मानो। सच्चे हृदयसे भगवान्‌में लग जाओ, फिर सब ठीक हो जायगा। मैं चेला बनाता नहीं, पर काम गुरुका ही करता हूँ! आप भगवान्‌में लग जाओ तो मैं अपनेपर आपकी बड़ी कृपा मानूँगा! गुरु हाथ नहीं जोड़ता, पर मैं हाथ जोड़कर कहता हूँ कि आप सच्चे हृदयसे भगवान्‌में लग जाओ।

*** *** ***

श्रोता—मैं कोई भी सत्कार्य करता हूँ तो अहंकार पैदा हो जाता है, क्या करूँ? अहंकार कैसे मिटे?

स्वामीजी—सब बातोंकी दवाई एक ही है—'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारो। अपने बलसे मिटाओ, न मिटे तो 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' पुकारो।

श्रोता—आपने बताया कि हम मुसाफिर हैं, तो हम भगवान्‌के घरसे क्यों निकाल दिये गये?

स्वामीजी—आपको निकाला नहीं है, प्रत्युत आप खुद निकले हो। अगर भगवान् निकालते तो जिम्मेवारी भगवान्‌पर होती। आप खुद निकले हो, इसलिये आपपर जिम्मेवारी है। भगवान् कभी निकालते

नहीं। कहाँ लिखा है कि भगवान्‌ने निकाल दिया? उनका निकालनेका स्वभाव ही नहीं है। पूतनाने मारनेके लिये जहर दिया तो उसको भी भगवान्‌ने माँकी गति देकर अपने घर भेज दिया!

श्रोता—कैंसर आदि भयंकर बीमारियाँ भी क्या भगवान्‌के नामसे ठीक हो सकती हैं?

स्वामीजी—हाँ, हो सकती हैं। भगवान्‌के नामसे क्या नहीं हो सकता! परन्तु भक्तलोग बीमारी आदि दूर करनेमें भगवान्‌के नामका प्रयोग नहीं करते। जो अत्यन्त लोभी होता है, वह पैदल चला जाता है, पर पैसा खर्च नहीं करता। भगवान्‌का नाम पैसोंसे बहुत कीमती है। उसको रोग दूर करनेमें क्यों लगायें? समझदार आदमी कभी भी भगवान्‌के नामका प्रयोग बीमारी आदि दूर करनेमें नहीं करेगा। जन्म-मरण दूर करनेवाले भगवान्‌के नामको बीमारी आदि दूर करनेमें कैसे लगाया जाय! नाम खर्च करके बीमारी मिटायें तो भी शरीर मरेगा और बीमारी रहे तो भी मरेगा। एक दिन जरूर मरेगा ही, फिर उसके लिये भगवान्‌का नाम क्यों खर्च करें? भगवान्‌के नामके माहात्म्यको जाननेवाला ऐसा कभी नहीं करता। दुःख तो भोगनेसे दूर हो जायगा। **मनुष्य सकामभाव तब रखता है, जब वह मूर्ख होता है!**

श्रोता—सूआ-सूतक होनेपर घरमें जो ठाकुरजी हैं, उनकी पूजा करें कि नहीं?

स्वामीजी—घरके जो अपने लड्डूगोपाल हैं, उनमें सूआ-सूतक नहीं लगता। अगर मूर्तिकी प्राण-प्रतिष्ठा की हुई हो तो उसमें सूआ-सूतक लगता है। उसकी पूजा ब्राह्मणसे अथवा विवाहित बहन-बेटीसे करानी चाहिये। विवाह होनेपर बहन-बेटीका गोत्र दूसरा हो जाता है। परन्तु जिनकी प्राण-प्रतिष्ठा नहीं हुई है, ऐसे ठाकुरजी अपने घरके बालककी तरह ही हैं। अपने बालकको कोई सूआ-सूतक नहीं लगता।

श्रोता—मैं बचपनसे सत्संग करती हूँ, पर भगवान्‌में वैसा प्रेम नहीं हो रहा है! इसका क्या उपाय करूँ?

स्वामीजी—भगवान्‌से कहो कि 'हे नाथ! मुझे प्रेम दो'। यह अपने उद्योगसे नहीं होता, प्रत्युत भगवान्‌की कृपासे होता है। भगवान्‌से एकान्तमें रोकर कहो कि महाराज! अपने चरणोंका प्रेम दो। भगवान्‌का प्रेम, भक्ति माँगनेकी चीज है। भगवान्‌ने काकभुशुण्डिको सब कुछ देनेकी बात कही, पर अपनी भक्ति देनेकी बात नहीं कही—***'भगति आपनी देन न कही'*** (मानस, उत्तर० ८४। २)। कोई भी मातहत (अधीन, दास) बने तो बड़ोंको शर्म आती है कि इसको अपनेसे छोटा कैसे बनाऊँ? भगवान्‌को भी छोटा बनानेमें शर्म आती है। इसलिये भगवान्‌का प्रेम माँगो, भक्ति माँगो।

*** *** ***

श्रोता—कामना करनेसे लाभ नहीं है—यह बात तो समझमें आ गयी, पर कामना करनेसे नुकसान-ही-नुकसान है—यह आपकी बात समझमें नहीं आयी!

स्वामीजी—संसारमें जितने आदमी दुःख पा रहे हैं, उनकी कोई-न-कोई कामना है। जितने आदमी नरकमें पड़े हैं, सब कामनाके कारण पड़े हैं। जितने आदमी रो रहे हैं, वे सब कामनाके कारण रो रहे हैं। **कहीं भी कोई आदमी दुःखी है तो उसके भीतर कोई-न-कोई कामना है। कामना न हो तो दुःख हो ही नहीं सकता।**

अपमान होता है तो पाप कटते हैं। झूठी निन्दा होती है तो पाप कटते हैं। बुखार आता है तो पाप कटते हैं। अगर दुःख होता है तो कामना है कि बुखार उतर जाय।

कामना न हो तो दर्द होता है, पर दुःख नहीं होता। दर्द शरीरमें होता है, पर दुःख भीतर होता

है। बेटा होनेपर माँको प्रसवका दर्द तो होता है, पर दुःख नहीं होता। काँटा निकालते समय दर्द तो होता है, पर दुःख नहीं होता। कामना न हो तो बुखारमें, निन्दामें, अपयशमें भी आनन्द आता है!

श्रोता—कामनाका सर्वथा त्याग होनेपर परमात्माकी प्राप्ति तत्काल होती है या देरी लगती है?

स्वामीजी—तत्काल होती है! कोई-न-कोई कामना होती है, तभी देरी लगती है। कोई भी कामना न हो तो देरी लगेगी ही नहीं। कामना ही आड़ है। कामनाके सिवाय और कोई आड़ है ही नहीं। आप निष्काम हो जाओ तो सब जगह ही भगवान् प्रत्यक्ष हैं—***'सब जग ईस्वररूप है'***। सब जगह भगवान्-ही-भगवान् दीखेंगे! मृत्युमें भी भगवान् दीखेंगे! हरदम आनन्द रहेगा!

भगवान्‌से प्रार्थना करो कि महाराज! ऐसी कृपा करो कि एक आपके सिवाय कुछ नहीं चाहूँ। भगवान्‌से माँगो; जरूर मिलेगा।

श्रोता—कामना पैदा होनेका कारण क्या है?

स्वामीजी—कारण है—मूर्खता, अनजानपना। **भीतरमें मूर्खता भरी है, इसलिये निष्कामभाव समझमें नहीं आता!**

श्रोता—पहले आप नामजपकी बात कहते थे, अब आप कहते हैं कि भगवत्प्राप्ति क्रियासाध्य नहीं है! इन दोनों बातोंमें मेल कैसे हो; क्योंकि नामजप भी क्रिया है?

स्वामीजी—नामजपमें क्रिया मुख्य नहीं है, प्रत्युत भाव मुख्य है। भाव मुख्य होनेपर क्रिया नहीं रहती, उपासना हो जाती है।

श्रोता—कीर्तनमें 'हरे कृष्णा' बोलना ठीक है या 'हरे कृष्ण'?

स्वामीजी—**'हरे कृष्ण'** बोलना चाहिये। **'हरे रामा'** अथवा **'हरे कृष्णा'** नहीं बोलना चाहिये।

*** *** ***

कुछ बातें हैं, जिनको आप ठीक समझ लो तो बहुत जल्दी पारमार्थिक उन्नति हो सकती है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। पहली बात है कि एक तिल-जितनी, एक धागे-जितनी, एक केश-जितनी चीज भी अपनी नहीं है। इतना माननेसे आप निहाल हो जाओगे.....निहाल हो जाओगे.....निहाल हो जाओगे! सदाके लिये शान्ति हो जायगी! जो मिलती है और बिछुड़ जाती है, वह चीज अपनी होती ही नहीं। दूसरी बात, मेरेको कुछ नहीं चाहिये। ये दो बातें आप मान लो तो बेड़ा पार हो जायगा!

बहुत वर्षों पहले मैंने यह बात कही थी कि पाँच-सात वर्ष और जी जाऊँगा तो परमात्मप्राप्तिकी बहुत सुगम बात बता दूँगा। आज मैं सुगम बात बता रहा हूँ! **मेरा कुछ नहीं है और मेरेको कुछ नहीं चाहिये—इन दो बातोंमें बड़ा भारी हित भरा हुआ है!** ये दो बातें आप कर सकते हो। आपको वहम है कि हम इसको नहीं कर सकते। इसको करनेमें आप सब योग्य हो, आपको अधिकार है, आपका दायित्व है, आपमें शक्ति है। केवल आपका पक्का विचार होना चाहिये। उपाय कई हैं, पर ऐसा सुगम और अचूक उपाय दूसरा कोई नहीं है! यह रामबाण उपाय है, कभी निष्फल नहीं जाता।

मेरा कुछ नहीं है और मेरेको कुछ नहीं चाहिये—इन दो बातोंमें इतने भाव भरे हुए हैं कि बड़े-बड़े ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं! ये बातें बड़ी कठिन दीखती हैं, पर वास्तवमें बड़ी सुगम हैं! इनका पालन करनेमें भगवान्, सन्त-महात्मा, शास्त्र और धर्म हमारी सहायता करनेके लिये तैयार हैं। इनकी सहायतासे काम जल्दी होगा, इसमें सन्देह नहीं है। बहुत विचार करके सार बात आपको बतायी है! थोड़े समयमें सुगमतासे कल्याण हो जाय—ऐसी युक्तियोंकी खोजमें मैं हृदयसे लगा हुआ हूँ!

आप केवल स्वीकार कर लें कि हमारा कुछ नहीं है। आपके खाने-पीनेमें, चलने-फिरनेमें, कुटुम्बका पालन करनेमें, नौकरी करनेमें, काम-धंधा करनेमें कोई बाधा नहीं लगेगी। साधु बनना नहीं, कहीं बाहर जाना नहीं। योग्यताकी, विद्याकी, पढ़ाईकी, बलकी जरूरत नहीं है। जो चीजें आपके पास नहीं हैं, उन चीजोंकी भी जरूरत नहीं है। कोई युक्ति सीखनेकी जरूरत नहीं है। किसीके पास जानेकी जरूरत नहीं है। आप जैसे हैं, वैसे ही केवल भीतरसे इसको स्वीकार कर लें कि मेरा कुछ नहीं है और मेरेको कुछ नहीं चाहिये। अगर 'मैं कुछ नहीं'—यह हो जाय तो उसी क्षण निहाल हो जाओगे! गीताने कहा है—'**निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति**' (गीता २। ७१)।

*** *** ***

श्रोता—घरमें ठाकुरजीका मन्दिर है। भगवान्‌का मुख पूर्व दिशाकी ओर है। हम बैठते हैं तो हमारा मुख पश्चिम दिशाकी ओर होता है। यह उचित है क्या?

स्वामीजी—कोई हर्ज नहीं। आप दिशा मत देखो, प्रत्युत यह देखो कि मैं भगवान्‌के सम्मुख हूँ।

श्रोता—घरके सामने पीपलका पेड़ है, क्या करें?

स्वामीजी—शास्त्रमें इसका निषेध आता है। अपने घरपर पीपलकी छाया पड़ना शुभ नहीं है। घर बदल देना चाहिये।

*** *** ***

कामना नहीं करनी चाहिये, पर कोई हमारी मदद करे और हमें उसकी आवश्यकता हो, हम मुसीबतमें हों, तब भगवान्‌की मदद समझकर उसको ले लेनेमें कोई हर्जा नहीं है।

गृहस्थके कामके लिये कामना करनेकी जरूरत है ही नहीं।

किसीको वैरी बनाना हो तो उसको रुपये उधारमें दे दो!

किसीको कानसे सुनायी न भी दे तो भी सत्संगमें बैठनेमात्रसे, देखनेमात्रसे लाभ होता है।

'हे नाथ! हे मेरे नाथ!'—यह बहुत बढ़िया मन्त्र है। एकान्तमें रोकर भगवान्‌को पुकारो। इससे सब काम ठीक हो जायगा। यह एक मन्त्र सबमें काम आयेगा। कीर्तन करो तो उस समय भी 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारो। रात और दिन भगवान्‌को पुकारो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। भूख लगे तो रोटी खा लो, प्यास लगे तो जल पी लो, नींद आये तो सो जाओ, बाकी हर समय 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारो। इस पुकारमें बड़ी ताकत है!

*** *** ***

आप जीवन्मुक्त हो जायँ, जीते-जी मुक्त हो जायँ! जन्म-मरणसे रहित हो जायँ! आपको जीवन्मुक्तिके आनन्दका अनुभव हो जाय, इसके लिये ही यह सत्संग है! उस तत्त्वका अनुभव सबको हो सकता है; क्योंकि उस तत्त्वका अनुभव करनेके लिये ही यह शरीर है और उस तत्त्वका अनुभव करनेके लिये ही यह सत्संग है।

हरदम रहनेवाले सत्‌के साथ सम्बन्ध होनेका नाम ही सत्संग है। बातें करना सत्संग नहीं है, प्रत्युत सच्चर्चा है। सत्संग है—भीतरसे परमात्माके साथ सम्बन्ध हो जाय।

जन्मना-मरना अस्वाभाविक है। भगवान्‌की प्राप्ति, तत्त्वज्ञान स्वाभाविक है। हम भगवान्‌के यहाँके हैं; क्योंकि हम उनके अंश हैं। भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक और सत्यलोक—ये ऊपरके सात लोक हैं, और अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल—ये नीचेके

सात लोक हैं। ये कुल चौदह भुवन (लोक) हैं, पर ये सब मुसाफिरीमें हैं! इनमेंसे कोई भी देश अपना नहीं है! केवल भगवान्‌का धाम अपना है, जहाँ जानेके बाद फिर कोई लौटकर संसारमें, जन्म-मरणमें नहीं आता।

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥

(गीता १५। ६)

'उस परमपदको न सूर्य, न चन्द्र और न अग्नि ही प्रकाशित कर सकती है और जिसको प्राप्त होकर जीव लौटकर संसारमें नहीं आते, वही मेरा परम धाम है।'

उसकी प्राप्तिके लिये ही यह सत्संगका आयोजन है। उसको सभी भाई-बहन प्राप्त कर सकते हैं। उसकी प्राप्तिके सब अधिकारी हैं। परन्तु जबतक भोग भोगने तथा रुपये इकट्ठा करनेकी रुचि है, तबतक परमात्माकी प्राप्ति नहीं होगी, कल्याण नहीं होगा।

'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'—यह एक मन्त्र है। दिनमें प्रत्येक घण्टे तीन-चार-पाँच बार कह दो। नींद खुलनेसे लेकर नींद आनेतक 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं' कहते रहो। **भगवान्‌को केवल याद रखनेमात्रसे अशान्ति दूर हो जायगी, दुःख दूर हो जायगा, सन्ताप दूर हो जायगा, जलन दूर हो जायगी, आनन्दकी प्राप्ति हो जायगी!**

*** *** ***

श्रोता—कोई ऐसा उपाय बतायें, जिससे हम घरपर रहकर भगवान्‌की प्राप्ति कर सकें।

स्वामीजी—आपका जो यह विचार है कि घरपर रहकर कर लूँ, यह विचार ही बाधा है और कोई बाधा है ही नहीं! घरपर रहूँ—यह बाधा है! घरपर रहते हुए आपको भगवान्‌की प्राप्ति हो सकती है, आप सन्त-महात्मा हो सकते हैं—इसमें सन्देह नहीं है, पर मनमें यह आग्रह रहेगा कि 'मैं घरपर रहूँ' तो प्राप्ति नहीं होगी। आप घरपर रहो, पर आपका मन घरपर न रहे। आप घरपर रहो चाहे मत रहो, पर आग्रह नहीं होना चाहिये। यह आग्रह आपको परमात्माकी प्राप्ति नहीं होने देगा।

घरपर रहना दोष नहीं है, पर घरपर कोई रह सकता ही नहीं, किसीकी ताकत ही नहीं कि रह जाय! आप मुसाफिर हो। मुसाफिर घरपर कैसे रहेगा? जो हरदम घरपर रहता है, वह मुसाफिर नहीं होता। सब जीव मुसाफिर हैं। घरपर रहनेसे बाधा नहीं होगी, पर मैं घरपर रहूँ और प्राप्ति हो जाय—यह बाधा जरूर होगी। यह आपको बाँधनेवाली है। इसलिये आग्रह बिल्कुल नहीं होना चाहिये। फिर घरपर रहते हुए ही काम हो जायगा, साधु-संन्यासी बननेकी जरूरत नहीं है। पासमें लाखों रुपये रहते हुए भी परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है, पर रुपये भी रहें और परमात्माकी प्राप्ति भी हो जाय—यह नहीं होगा।

जैसे 'मैं गृहस्थ हूँ'—यह बन्धन है, ऐसे ही 'मैं साधु हूँ'—यह भी बन्धन है। हमारा सम्बन्ध केवल भगवान्‌के साथ होना चाहिये—***'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई'***। जबतक दूसरा कोई है, तबतक सिद्धि नहीं होगी। आप कहीं रहो, कहीं जाओ, भगवान्‌का सम्बन्ध मिटेगा नहीं।

श्रोता—हम ध्यानसहित नामजप करना चाहते हैं, पर बाहर बहुत हल्ला होनेके कारण नामजप हो नहीं पाता, क्या करें?

स्वामीजी—यह कारण नहीं है। नामजपमें आपका मन नहीं लगता, तभी बाहरका हल्ला बाधा देता है। आप रुपये गिनते हो, तब बाधा लगती है क्या? मन लग जायगा, तब बाधा नहीं लगेगी,

भले ही बाहर ढोल बजें!

लगन लगन सब ही कहैं, लगन कहावै सोय।
नारायन जिस लगन में, तन मन दीजै खोय॥

जबतक मन न लगे, एकान्तमें बैठकर भजन करो।

*** *** ***

श्रोता—आपने कहा था कि साधन-सम्बन्धी असली बात सन्तोंकी कृपासे समझमें आती है। इस बातका क्या आशय है?

स्वामीजी—मैं तो मुख्य कृपा भगवान्‌की ही मानता हूँ। भगवान्‌की कृपाके अन्तर्गत ही सन्तोंकी कृपा है। **सन्त-महात्माओंकी जो कृपा है, वह वास्तवमें भगवान्‌की ही कृपा है।** माँ-बापकी कृपा भी भगवान्‌की ही कृपा है। माँके स्नेहमें भी भगवान्‌की कृपा है। आप भगवान्‌में लगे रहो, पर काम कृपासे ही होगा, अपने उद्योगसे नहीं।

खास बात यह है कि सिवाय भगवान्‌के कोई अपना नहीं है। ज्ञानमार्ग जाननेका है, पर लम्बा है। भक्तिमार्ग माननेका है, पर बहुत जल्दी सिद्ध होनेवाला है; परन्तु एक बात माननी पड़ेगी कि भगवान्‌के सिवाय मेरा कोई नहीं है। यह बात दृढ़तासे मान लेनी चाहिये कि ***'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई'***। भगवान्‌के सिवाय और कोई मेरा नहीं है। अगर कोई मेरा दीखता है तो वह धोखा है।

सार बात है कि भगवान् मेरे हैं। **भगवान्‌में मेरा-पना इतना विचित्र है कि उसमें मैं-पना भी खत्म हो जाता है और केवल भगवान् रह जाते हैं!**

*** *** ***

श्रोता—शरीर बीमार रहता है। यदि शरीरको ठीक करनेकी कामना न करें तो न भजन होगा, न सेवा होगी?

स्वामीजी—यह बिल्कुल गलत बात है! भजन शरीरके अधीन नहीं है। केवल नामजप ही भजन नहीं है। भगवान् मेरे हैं—यह भी भजन है। सेवा भावके अधीन है, पदार्थके अधीन नहीं। असली भजन है—भगवान् प्यारे लगें, मीठे लगें।

पन्नगारि सुनु प्रेम सम भजन न दूसर आन।
अस बिचारि मुनि पुनि पुनि करत राम गुन गान॥

(मानस, अरण्य० १०में पाठभेद)

इसमें बीमारी क्या बाधा देगी? माँ मेरी है तो क्या शरीर बीमार होनेपर माँ मेरी नहीं है?

*** *** ***

परमात्माको यादमात्र करनेसे पूर्णता हो जाती है—**'यस्य स्मरणमात्रेण जन्मसंसारबन्धनात्। विमुच्यते.....'** (महाभारत, अनुशासन० १४९)! इतनी सस्ती कोई चीज नहीं है! एक परमात्मा ही इतने सस्ते हैं कि याद करनेमात्रसे मिल जायँ। उनको हरदम याद रखो। परमात्माके अंश होनेके कारण सब जीवोंका परमात्मापर समान अधिकार है। सबको परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है। हरदम एक ही बात कहो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। याद रखनेकी शक्ति भी भगवान्‌से ही मिलेगी। एक भगवान्‌को याद करनेसे आपके लौकिक और पारमार्थिक सब काम स्वतः-स्वाभाविक सिद्ध हो जायँगे। भागवतमें साफ आया है—

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्॥

(श्रीमद्भा० २। ३। १०)

'जो बुद्धिमान् मनुष्य है, वह चाहे सम्पूर्ण कामनाओंसे रहित हो, चाहे सम्पूर्ण कामनाओंसे युक्त हो, चाहे मोक्षकी कामनावाला हो, उसे तो केवल तीव्र भक्तियोगके द्वारा परमपुरुष भगवान्‌का ही भजन करना चाहिये।'

अगर आप कुछ नहीं चाहते हो तो भगवान्‌को याद करो। अगर आप मुक्ति, कल्याण चाहते हो तो भगवान्‌को याद करो। अगर आप सब कुछ चाहते हो तो भगवान्‌को याद करो। एक भगवान्‌में लग जाओ तो सब काम सिद्ध हो जायगा—***'एकै साधे सब सधै'!*** भगवान्‌को याद करनेसे कुछ बाकी नहीं रहेगा। आपकी सब तरहकी अशुद्धि, अशान्ति सदाके लिये मिट जायगी।

*** *** ***

श्रोता—प्रातःकाल तीन-चार घण्टे आनन्दकी स्थिति रहती है, पर यह स्थिति धीरे-धीरे कम होती जाती है!

स्वामीजी—एकान्तमें अच्छा मन लग जाय तो सन्तोष मत करो, उसका सुख मत लो। जैसे रुपया मिलनेपर लोभ बढ़ता है कि और मिले, और मिले, ऐसे ही साधनका लोभ होना चाहिये कि और बढ़े, और बढ़े! कितना हो गया, उस तरफ मत देखो।

श्रोता—सत्संगमें सुना है कि आनन्द कभी मिटता नहीं!

स्वामीजी—जिससे सन्तोष हो जाय, वह आनन्द नहीं लेना। संसारमें तो सन्तोष बड़ा है, पर भगवान्‌की प्राप्तिमें सन्तोष बाधक है।

सन्तोषस्त्रिषु कर्तव्यः स्वदारे भोजने धने।
त्रिषु चैव न कर्तव्यः स्वाध्याये जपदानयोः॥

(चाणक्यनीतिदर्पण ७। ४)

'अपनी स्त्री, भोजन और धन—इन तीनोंमें तो सन्तोष करना चाहिये, पर स्वाध्याय, जप और दान—इन तीनोंमें कभी सन्तोष नहीं करना चाहिये।'

भगवान्‌की प्राप्तिके मार्गमें सन्तोष न करके तृष्णा बढ़ाओ।

श्रोता—आनन्दमें कमी हो जाती है तो क्या मार्ग सही नहीं है?

स्वामीजी—मार्ग तो ठीक है, पर सुख लेनेसे साधन खर्च हो जाता है! जैसे पाँच रुपये कमाये और चार रुपये खर्च कर दिये तो एक रुपया ही बाकी रहा! ऐसे ही आप राजी हो जाते हो तो वह खर्च हो जाता है। राजी होनेसे उस साधनका भोग होता है, भोग होनेसे साधन खर्च हो जाता है, और खर्च होनेसे पूँजी कम हो जाती है। फिर वैसी वृत्तियाँ नहीं रहतीं।

अपने साधनका भोग भी मत करो और दूसरोंको कहो भी मत। दूसरोंको कहना भी भोग है। साधनमें अपना उद्योग न मानकर भगवान्‌की कृपा मानो।

श्रोता—मन, बुद्धि, अहम् भगवत्स्वरूप हैं—यह बात हमारी समझमें कैसे आये?

स्वामीजी—यह बात समझमें नहीं आती, मान लो। अपने माँ-बापको कोई समझ नहीं सकता। उनको मानना ही पड़ता है। यह मानना समझसे भी तेज है!

आप परा प्रकृति हो और मन-बुद्धि आदि अपरा प्रकृति है। अपरा प्रकृति आपकी नहीं है। यह परमात्माकी है (गीता ७। ४-५)। अपरा प्रकृतिको अपना मानना ही बाधा है।

*** *** ***

श्रोता—अपने बच्चोंको श्रेष्ठ और भगवद्भक्त कैसे बनायें?

स्वामीजी—बच्चोंको अपना मानते हो—यह बाधा है। उन्हें भगवान्‌को भेंट कर दो। बच्चा मर जाय तो क्या उसको जिला दोगे आप? अपने साथ रख लोगे? उसको अपना मानना ही गलती है।

जो चीज भगवान्‌के अर्पित करते हैं, वह प्रसाद हो जाती है। लखपति-करोड़पति आदमी भी प्रसादके एक कणसे राजी हो जाते हैं! क्या वे मिठाईके भूखे हैं? वे भगवान्‌की चीजसे राजी होते हैं, मिठाईसे नहीं। बच्चा अपना नहीं है, भगवान्‌का है—ऐसा मान लो तो वह ठीक हो जायगा। वह मर जाय तो ठाकुरजीका, जी जाय तो ठाकुरजीका; अच्छा है तो ठाकुरजीका, मन्दा है तो ठाकुरजीका। जैसा है, ठाकुरजीका है। ठाकुरजीकी चीजमें आपकी क्या पंचायती! ऐसे ही आप मनको अपना मानते रहोगे तो मन कभी शुद्ध नहीं होगा। ममतासे ही वस्तु अशुद्ध होती है। अगर शुद्ध करना चाहते हो तो अपनापन छोड़ो।

*** *** ***

श्रोता—योगवासिष्ठमें आया है कि ज्ञान होनेके बाद सिद्ध पुरुष सर्वव्यापकताका अनुभव करता है, वह आकाशवत् हो जाता है, उसकी वृत्ति ब्रह्माकार हो जाती है। इसका थोड़ा विस्तारसे विवेचन कीजिये।

स्वामीजी—ज्ञान होनेपर वृत्ति रहती ही नहीं। **ब्रह्माकार वृत्ति साधककी होती है, सिद्धकी नहीं।** ज्ञान होनेपर जगत् नहीं रहता, सब ब्रह्मरूप ही होता है। जगत् रहे तो ब्रह्माकार वृत्तिकी जरूरत है। जगत् है ही नहीं तो ब्रह्माकार वृत्तिकी क्या जरूरत है? शंकराचार्यजीने साधकके लिये लिखा है—**'वृत्तिं ब्रह्ममयीं कृत्वा पश्येत् ब्रह्ममयं जगत्'** अर्थात् वृत्तिको ब्रह्ममयी करके जगत्‌को देखे। जगत् है, तभी तो जगत्‌को देखेगा। वास्तवमें जगत् रहता ही नहीं, केवल परमात्मतत्त्व ही रहता है। वह परमात्मतत्त्व अनिर्वचनीय है। उसका विवेचन नहीं होता।

एक बार रामजीने वसिष्ठजीसे कहा कि आप ब्रह्मका वर्णन करें तो वसिष्ठजी चुप हो गये। रामजीने पुनः कहा कि महाराज, ब्रह्मका वर्णन करें तो वसिष्ठजी बोले कि मैंने ब्रह्मका वर्णन कर दिया!

चित्रं वटतरोर्मूले वृद्धाः शिष्या गुरुर्युवा।
गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यास्तु छिन्नसंशयाः॥

(दक्षिणामूर्तिस्तोत्रम् १२)

'क्या ही आश्चर्य है! वटवृक्षके नीचे वृद्ध शिष्य और युवा गुरु विराजमान हैं। गुरुके मौन व्याख्यानसे शिष्योंके सब संशय मिट गये हैं!'

शिष्य तो तत्त्वप्राप्तिके लिये भटकते-भटकते बूढ़े हो गये, पर गुरु तत्त्वमें स्थित है, इसलिये कभी बूढ़ा होता ही नहीं! कारण कि तत्त्वमें काल है ही नहीं, फिर बूढ़ा कैसे हो!

श्रोता—मोक्ष क्या होता है और वह मरनेके बाद ही मिलता है या पहले भी मिल सकता है?

स्वामीजी—पहले भी मिल सकता है। मरनेके बाद मिले, इसका क्या पता? मोक्ष होनेपर राग-द्वेष, हर्ष-शोक, चिन्ता, कर्म आदि सब खत्म हो जाते हैं। 'मोक्ष' नाम छूटनेका है और 'प्रेम' नाम मिलनेका है। संसारसे सर्वथा छूटनेका नाम 'मुक्ति' है और परमात्मासे मिलनेका नाम 'भक्ति' है।

वास्तवमें बन्धन है नहीं। जो नहीं होता, वही मिटता है। जो होता है, वह मिटे कैसे? असत्का भाव नहीं होता और सत्का कभी अभाव नहीं होता—'**नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः**' (गीता २। १६)। बनावटी मिट जाता है और जो वास्तवमें है, वह रह जाता है।

श्रोता—संसार क्षणभंगुर है, पर हमारी इसमें भूलसे सद्बुद्धि हो गयी है, इसलिये संसारसे वैराग्य होना बड़ा कठिन हो गया है। अब संसारका आकर्षण कैसे मिटे?

स्वामीजी—भगवान्को 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारो। हमसे पूछो तो हमें सत्संगसे लाभ हुआ है। सत्संगसे लाभ होता ही है, यह हमारी जँची हुई बात है। सत्संगसे मुफ्तमें चीज मिलती है, कोई दाम चुकाना नहीं पड़ता!

संत बिसुद्ध मिलहिं परि तेही। चितवहिं राम कृपा करि जेही॥

(मानस, उत्तर० ६९। ४)

जब द्रवै दीनदयालु राघव, साधु-संगति पाइये।

(विनय० १३६। १०)

सत्संगमें समय तो लौकिक खर्च होता है, पर धन मिलता है अलौकिक! संसारमें तो बाजरा बोओ तो बाजरा होता है, मक्का बोओ तो मक्का होता है, पर सत्संगमें अनित्य चीज बोओ तो नित्यकी खेती होती है! मरणधर्मा चीजसे अमरताकी प्राप्ति होती है—'**मर्त्येनाप्नोति मामृतम्**' (श्रीमद्भा० ११। २९। २२)!

सत्संग करो और हरदम 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारो—ये दो उपाय हैं। एक दूसरी बात यह है कि वैराग्यवान्का संग करो। वैराग्यवान्के संगसे वैराग्य होता है। वैराग्यवान्के पास रहो, उनकी आज्ञाका पालन करो। फिर अपने-आप वैराग्य होता है, करना नहीं पड़ता।

'हे मेरे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'—इस एकसे सब हो जायगा! ज्ञान, वैराग्य, त्याग सब आ जायँगे। सब दैवी सम्पत्ति आ जायगी। 'दैवी सम्पत्ति' में 'देव' शब्द परमात्माका वाचक है, देवताका नहीं। देवता तो भोगी होते हैं। दैवी सम्पत्ति मोक्ष देनेवाली होती है—'**दैवी सम्पद्विमोक्षाय**' (गीता १६। ५)।

*** *** ***

'**वासुदेवः सर्वम्**' का अनुभव करनेके लिये आपको खास यह जानना है कि मैं परमात्माका शुद्ध, निर्मल चेतन अंश हूँ, मेरेमें जड़ता नहीं है। इतनी बात आप स्वीकार कर लो, फिर सब ठीक हो जायगा। '**वासुदेवः सर्वम्**' का अनुभव हो, चाहे न हो, चिन्ता मत करो। इतना मान लो हम साक्षात् परमात्माके अंश हैं तो '**वासुदेवः सर्वम्**' का अनुभव हो जायगा। आपमें जड़ प्रकृतिका मिश्रण नहीं है। कृपा करके सब भाई-बहन कम-से-कम इतना स्वीकार कर लें कि मैं भगवान्का हूँ।

श्रोता—बाहरी व्यवहारमें क्या फर्क पड़ेगा?

स्वामीजी—राग-द्वेषरहित बर्ताव होगा। राग-द्वेष, हर्ष-शोक, दुःख, सन्ताप, जलन, हलचल आदि नहीं होंगे। शान्ति, आनन्द होगा। मैं भी भगवान्का हूँ, संसार भी भगवान्का है—इतनी बात मान लो। फिर भगवान्में ही लीन हो जाओ। आपकी जगह भी भगवान् ही रह जायँ। भगवान्को कह दो कि मेरी जगह भी आप ही आ जाओ। पूर्णता हो जायगी!

श्रोता—मैं भगवान्का हूँ—यह सूक्ष्म अहम् तो रहता ही है!

स्वामीजी—रहने दो, कोई हर्ज नहीं है। उसकी पंचायती मत करो। रामायणमें लिखा है—

अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे॥

(मानस, अरण्य० ११। ११)

मैं परमात्माका हूँ—यह समझमें नहीं आये तो भी मान लो, समझमें आये तो भी मान लो।

श्रोता—एक तो यह बात है कि मैं परमात्माका हूँ, और मेरा कोई नहीं है। दूसरी बात है कि केवल परमात्मा-ही-परमात्मा हैं, मैं हूँ ही नहीं। कौन-सी बात मानें?

स्वामीजी—पहली बात मान लो तो दूसरी बात उसका फल होगा। पहले यह मान लो कि मैं परमात्माका हूँ, फिर इसका फल यह होगा कि केवल परमात्मा ही रह जायँगे, आप नहीं रहोगे।

श्रोता—जब सब संसार ईश्वररूप ही है तो फिर यह बात हमारे माननेमें क्यों नहीं आती?

स्वामीजी—माननेमें इसलिये नहीं आती कि आप संसारका सुख भोगते हो, सुख छोड़ते नहीं, इसलिये यह बात समझमें नहीं आती। जबतक आपको अनुकूलता अच्छी लगती है और प्रतिकूलता बुरी लगती है, तबतक यह बात समझमें नहीं आती।

संसारका सुख भोगनेमें फायदा नहीं है और नुकसान बड़ा भारी है! साधकको सबसे पहले ही यह मान लेना चाहिये कि संसारका सुख नहीं भोगना है। सांसारिक चीजोंसे सुखी नहीं होना है। **मैं भगवान्‌का हूँ और संसारका सुख नहीं भोगना है—यह दो बात मान लो। आपका सब काम ठीक हो जायगा!**

श्रोता—संसारका सुख भोगनेकी आदत पड़ी हुई है, यह कैसे छूटे?

स्वामीजी—भगवान्‌से प्रार्थना करो कि 'हे मेरे नाथ! बचाओ!'। भगवान्‌के समान बलवान् कोई नहीं है। वे जरूर बचाते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। भगवान्‌के आगे रोओ और कहो कि 'हे नाथ! मैं छोड़ना चाहता हूँ, पर मेरेसे सुख छूटता नहीं!' फिर सब काम ठीक हो जायगा!

श्रोता—पतन शरीरका होता है या आत्माका?

स्वामीजी—शरीरके साथ सम्बन्ध (मैं-मेरा) माननेके कारण आत्माका पतन होता है। आपका खुदका पतन होता है। आप अपनेको जो मानते हो, उसका पतन होता है। शरीरके साथ सम्बन्ध नहीं माननेसे उद्धार हो जायगा।

श्रोता—बिना करणकी सहायताके भगवत्प्राप्ति कैसे होगी? मन-बुद्धि आदि तो काममें लेने ही पड़ेंगे!

स्वामीजी—काममें लो, पर अपना मत मानो। यह सत्संग-पण्डाल अपना नहीं है, पर काममें लेते हैं। बिछौना काममें लेते हैं, पंखा काममें लेते हैं, रोशनी काममें लेते हैं, क्या हर्ज हुआ? काममें लेना दोषी नहीं है, अपना मानना दोषी है।

*** *** ***

जड़-चेतनके विभागमें नयी बात क्या है? मन-बुद्धि-अहम् भी मैं नहीं हूँ। ये भी मिट्टीके ढेलेकी तरह एक जातिके हैं। यह बात हरेक जगह मिलती नहीं। पुस्तकोंसे इन बातोंका बोध नहीं होगा। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पाँचों मैं नहीं हूँ, ऐसा आप संसारमें तो जानते हैं, पर अपने शरीरपर विचार कम करते हैं। वास्तवमें शरीरपर विचार करना चाहिये कि पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाशसे ही बना हुआ शरीर है, और शरीर जिससे बना है, उसीसे संसार बना हुआ है। अतः शरीर और संसार एक हैं। मन, बुद्धि और अहम् भी इसी जातिके हैं। मन-बुद्धि-अहम् भी मैं नहीं हूँ, मेरे नहीं है और मेरे लिये नहीं है—यह बात नयी है!

मैं चाहता हूँ कि मन, बुद्धि और अहम् भी पृथ्वीकी तरह जड़ हैं—ऐसा आपको अनुभव होना चाहिये। जैसे यह खम्भा मैं नहीं हूँ, ऐसे ही मन भी मैं नहीं हूँ, बुद्धि भी मैं नहीं हूँ, अहम् भी मैं नहीं हूँ—ऐसा अनुभव होना चाहिये। मैं तो परमात्माका अंश हूँ, इसलिये मेरी एकता केवल परमात्माके साथ है। परमात्माके सिवाय और किसीके साथ मेरी एकता नहीं है। जैसे परमात्मा चेतन हैं, ऐसे ही मैं भी चेतन हूँ। भगवान्‌का जो स्वरूप है, वही मेरा स्वरूप है। जैसे शरीरमें माँ और बाप दोनोंका अंश होता है, ऐसे मेरे स्वरूपमें परमात्मा और प्रकृति दोनोंका अंश नहीं है, प्रत्युत मैं केवल परमात्माका ही अंश हूँ।

जड़ चीज केवल संसारकी सेवाके लिये है, हमारे कामकी नहीं है। जड़-विभाग केवल संसारकी सेवाके लिये है—यह नयी बात है! यह कर्मयोग है। ऐसा कोई आदमी हो, जो भगवान्‌को भी नहीं मानता और अपने-आप (आत्मा)-को भी नहीं मानता, केवल संसारको ही मानता है, उसका भी कल्याण हो सकता है! कैसे? ऐसा माने कि सांसारिक वस्तुएँ मेरी नहीं हैं और संसारकी वस्तुओंको संसारकी ही सेवामें लगा दे। ऐसा करनेसे उसको बोध हो जायगा।

जैसे ईश्वर चेतन है, ऐसे ही मैं भी ईश्वरका चेतन अंश हूँ—ऐसा माननेके बाद अपने-आपको ईश्वरके अर्पण कर दें। **अर्पण करनेके बाद मेरी जगह ईश्वर आ गया, मैं रहा ही नहीं—यह हो जाय तो पूर्णता हो जायगी!** यह आखिरी बात है।

*** *** ***

श्रोता—अभेद और अभिन्नता क्या है?

स्वामीजी—मैं बता तो दूँगा, पर यह बात जल्दी समझमें नहीं आयेगी! ज्ञानमार्गमें अभेद होता है और भक्तिमार्गमें अभिन्नता होती है। जीव तथा ब्रह्मकी एकता 'अभेद' है और अपने-आपको परमात्मामें लीन कर देना 'अभिन्नता' है। मेरी जगह भगवान् ही आ गये, मैं हूँ ही नहीं—यह अभिन्नता है। '**वासुदेवः सर्वम्**' केवल भगवान् ही हैं—यह अभिन्नता है, जो गीताका सिद्धान्त है। अभेद तत्त्वाद्वैत है और अभिन्नता प्रेमाद्वैत है।

गीतामें ज्ञानमार्गको लौकिक कहा है—'**लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा**' (गीता ३। ३), '**द्वाविमौ पुरुषौ लोके**' (गीता १५। १६), और भक्तिमार्गको अलौकिक बताया है—'**उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः**' (गीता १५। १७)। लौकिक-अलौकिकका यह भेद गीताकी किसी भी टीकामें देखनेमें नहीं आया है!

श्रोता—अभेद और अभिन्नताका अर्थ तो वास्तवमें एक ही निकलता है?

स्वामीजी—मैंने पहले ही निवेदन कर दिया था कि आप इसको समझ नहीं सकोगे! अभेद है—जीव-ब्रह्मकी एकता। अभिन्नता जीव-ब्रह्मकी एकतासे आगे है। अद्वैत सिद्धान्तमें जीव-ब्रह्मकी एकता बतायी है, पर जीवपना न रहकर केवल परमात्मा ही रहे—यह नहीं बताया है। जीवपना सर्वथा मिट जाय, केवल परमात्मा ही रह जायँ—यह अभिन्नता है। इस अभिन्नताको गीताने '**वासुदेवः सर्वम्**' कहा है।

अभेदमें सूक्ष्म अहम् रहता है, पर अभिन्नतामें अहम् सर्वथा नहीं रहता। अभेदमें रहनेवाला सूक्ष्म अहम् मुक्तिमें बाधक नहीं होता अर्थात् जन्म-मरण देनेवाला नहीं होता, प्रत्युत मतभेद करनेवाला होता है। सूक्ष्म अहम्‌के कारण ही अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत और अचिन्त्यभेदाभेद—ये पाँच मतभेद हुए हैं। परन्तु '**वासुदेवः सर्वम्**' में ये मतभेद रहते ही नहीं।

अद्वैत-सिद्धान्तमें जीव और ब्रह्मको 'एक' नहीं कहा है, प्रत्युत 'अद्वैत' कहकर द्वैतका निषेध किया

है। प्रायः लोगोंमें यह बात जँची हुई है कि ज्ञानमें अद्वैत और भक्तिमें द्वैत रहता है, पर भक्तिमें अभिन्नता हो जाती है—यह बात जानते ही नहीं!

कई वर्ष पहले मैंने कहा था कि कुछ वर्ष और जी गया तो परमात्मप्राप्तिकी बात और सुगमतासे बता दूँगा। वे बातें अब बता रहा हूँ! आप कम-से-कम इतनी बात मान लो कि मैं भगवान्‌का हूँ। अपने माँ-बापको मान ही सकते हैं, जान सकते ही नहीं। वीर्यका बिन्दु अपने बापको कैसे जानेगा? ईश्वरका अंश ईश्वरको कैसे जानेगा? जब अपने माँ-बापको भी आप नहीं जानते, तो फिर दुनियाके माँ-बापको कैसे जानोगे? जैसे आप मानते हो कि मैं माँका हूँ, ऐसे ही मान लो कि मैं भगवान्‌का हूँ।

*** *** ***

विचार करें, संसार और शरीरकी सहायताके बिना हम स्वतन्त्रतासे क्या कर सकते हैं? हम कामना और ममता-रहित हो सकते हैं। कामना और ममता-रहित होनेमें शरीर-संसारकी, किसी वस्तु, व्यक्ति, विद्या, योग्यता आदिकी आवश्यकता नहीं है। गीतामें आता है—

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति॥

(गीता २। ७१)

'जो मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओंका त्याग करके स्पृहारहित, ममतारहित और अहंतारहित होकर आचरण करता है, वह शान्तिको प्राप्त होता है।'

हम शरीर-संसारकी सहायताके बिना कामना, स्पृहा (जरूरत), ममता और अहंकारका त्याग कर सकते हैं। इनका त्याग करनेसे परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी। इसमें सब-के-सब स्वतन्त्र हैं, कोई पराधीन नहीं है। गीताने चार बातें कही हैं, पर मैं कहता हूँ कि आप केवल दो बातोंको स्वीकार कर लें कि **मेरा कुछ नहीं है और मेरेको कुछ नहीं चाहिये**। मेरा कुछ नहीं है—इसमें ममताका त्याग है, और मेरेको कुछ नहीं चाहिये—इसमें कामनाका त्याग है। ममता और कामनाको आप चाहें तो अभी छोड़ सकते हैं। इसमें समय नहीं लगता। न समय की जरूरत है, न सहायताकी जरूरत है, न पढ़ाईकी जरूरत है, न योग्यताकी जरूरत है। आप जैसे हो, वैसे ही ममता-कामनाको छोड़ सकते हो। जप-ध्यान आदि करनेमें कई बाधाएँ, विघ्न होते हैं, पर ममता-कामनाका त्याग करनेमें कोई विघ्न, अटकाव नहीं है। इनका त्याग करनेमें आपको कोई कमी नहीं आयेगी।

श्रोता—स्पृहा क्या है?

स्वामीजी—जरूरतको स्पृहा कहते हैं। जब हम बटवृक्षके नीचे रहते थे, तब एक साधु आये। उन्होंने कहा कि भिक्षा लेनेके लिये एक बर्तनकी जरूरत है, भले ही मिट्टीका हो। मैंने कहा कि मेरा स्वयं कहनेका तो स्वभाव नहीं है, पर कोई पूछेगा तो कह देंगे। पाँच-सात दिनके बाद वे साधु आकर बोले कि अब मत कहना; क्योंकि बर्तनके बिना पाँच-सात दिन निकल गये तो महीना भी निकल जायगा, महीना निकल जायगा तो वर्ष भी निकल जायगा, वर्ष निकल जायगा तो उम्र भी निकल जायगी! यह स्पृहा (जरूरत)-का त्याग है!

हम सन्तोंको भी पूछ सकते हैं कि महाराज! कोई जरूरत हो तो बताओ, पर ऐसा नहीं पूछ सकते कि कोई कामना हो तो बताओ! कोई तृष्णा हो तो बताओ!

*** *** ***

श्रोता—आपने कहा कि ममताका त्याग करो, पर ममताका त्याग हो नहीं सकता!

स्वामीजी—आप कहते हो कि ममताका त्याग नहीं हो सकता, हम कहते हैं कि आप ममता रख सकते ही नहीं! ममताको रख लें, ऐसी ताकत आपमें है ही नहीं! पहले छोटी अवस्थामें खिलौनोंमें ममता थी, पीछे रुपयोंमें, बेटे-पोतोंमें ममता हो गयी। आपकी ममता बदलती रहती है। आपने मकान बेचकर रुपये ले लिये तो मकानमें ममता नहीं रही, रुपयोंमें ममता हो गयी। रुपये किसीमें लगा दिये तो उसमें ममता हो गयी। ममता बदलती है, रहती नहीं। ममता टिक सकती ही नहीं!

अभी हमने ऐसा विचार किया है कि व्याख्यान देते तो बहुत वर्ष हो गये, अब आपको ऐसी बात बतायें, जिससे आपको परमात्माका अनुभव हो जाय। अनुभव तभी होगा, जब संसारकी ममता छूटेगी। **संसारमें ममता रखोगे तो परमात्माकी प्राप्ति कैसे होगी?** मीराबाईने कहा—***'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई'***। संसारमें ममता नहीं छूटेगी तो परमात्मामें अपनापन कैसे करोगे?

कबीर मनुआँ एक है, भावे जिधर लगाय।
भावे हरि की भगति करे, भावे विषय कमाय॥

आप ममताको छोड़ना न चाहो तो अलग बात है, पर ममताको आप रख सकते ही नहीं। ममता रहेगी नहीं, रहेगी नहीं, रहेगी नहीं! पिछले जन्ममें भी स्त्री-पुत्र, माता-पिता आदि थे ही, पर अब वे याद ही नहीं हैं! ऐसे ही इस जन्मकी भी ममता छूटेगी। किसीकी भी यह कहनेकी हिम्मत नहीं है कि मैं ममता छोड़ूँगा ही नहीं! जो स्वतः छूटनेवाली है, उसीको छोड़नेकी बात मैं कहता हूँ। वह छूटेगी तो फायदा नहीं होगा, पर आप छोड़ दोगे तो फायदा होगा। जिसको आप रख नहीं सकते, उसको छोड़नेमें आपको क्या बाधा लगी?

एक दरिद्र है और एक विरक्त, त्यागी है। बाहरसे देखनेपर दोनों बराबर दीखते हैं। दोनोंकी अंटीमें दाम नहीं, पैरमें जूती नहीं, तनपर पूरे कपड़े नहीं! परन्तु भीतरसे क्या वे एक समान हैं?

संसारमें 'ममता' होती है और भगवान्‌में 'आत्मीयता' होती है। संसारमें आत्मीयता होती ही नहीं। कारण कि संसार प्रकृतिका कार्य है और आप भगवान्‌के अंश हो। इसलिये भगवान्‌में आत्मीयता कभी छूटेगी नहीं। वह आत्मीयता अभी मौजूद है, पर उधर आपकी दृष्टि नहीं है। ममताके कारण आत्मीयता दीखती नहीं। ममता छोड़ दो तो दीखने लग जायगी।

*** *** ***

श्रोता—ममता छूटनेका उपाय क्या है?

स्वामीजी—एक ज्ञानमार्ग है और एक विश्वासमार्ग है। विश्वासमार्गकी दृष्टिसे देखें तो एक भगवान्‌के सिवाय दूसरा कोई मेरा है ही नहीं—***'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई'***। विश्वास, प्रेम, अपनापन सब एक भगवान्‌में ही हो। फिर ममता छूट जायगी। भगवान् ही साथमें थे, भगवान् ही साथमें हैं और भगवान् ही साथमें रहेंगे, और कोई साथमें रहनेवाला है ही नहीं, फिर किसमें ममता करें? अतः ममता एक जगह (भगवान्‌में) ही होनी चाहिये, दो जगह नहीं। यह विश्वासमार्ग सबसे श्रेष्ठ, सबसे ऊँचा है।

माता, पिता, स्त्री, भाई आदि जो अभी संसारमें नहीं हैं, उनमें अगर ममताके कारण मन जाता है तो उनके निमित्त नामजप करो, कीर्तन करो, गीता-रामायणका पाठ करो, विष्णुसहस्रनामका पाठ करो, हनुमानचालीसाका पाठ करो। जिनमें ममता दीखे, उनकी सेवा कर दो और बदलेमें कुछ मत चाहो। उनको दो, लो मत। इससे ममता मिट जाती है। जैसे, पचीस वर्षका जवान सहसा मर जाय

तो दुःख होता है। परन्तु सत्रह वर्षकी अवस्थासे आठ वर्षतक वह बीमार रहा और उसकी सेवा कर दी, रुपये भी लगा दिये, रातों जगे, वह मर जाय तो दुःख नहीं होगा। तात्पर्य है कि सेवा करनेसे ममता टूटती है।

सुखकी आशा और सुखका भोग—ये दोनों ममताको दृढ़ करते हैं। इसलिये इन दोनोंको छोड़कर दूसरेको सुख पहुँचाओ। पहले जिनसे सुख लिया है, उनका हमारे ऊपर कर्जा है। वह कर्जा जबतक रहेगा, तबतक ममता छूटनी कठिन है। इसलिये सुख लेना नहीं है, देना है। सुख लेते रहोगे तो ममता छूटेगी नहीं। सत्तर-अस्सी वर्षका बूढ़ा मर जाय तो दुःख नहीं होता; क्योंकि अब उससे सुख लेनेकी आशा नहीं रही। वे हमारा कुछ काम करेंगे, यह आशा नहीं रही।

जो मर गये हैं, उनकी ममता, चिन्ता-शोक मिटानेके लिये मैं तीन बातें कहता हूँ—१) उनकी याद आये तो उनको भगवान्‌के धाममें, भगवान्‌के चरणोंमें देखो, २) छोटे-छोटे बालकोंको खिलौने अथवा मिठाई दो, जिससे वे राजी हों और ३) गीता, रामायण आदिका पाठ, नामजप, दान-पुण्य करो और उनके अर्पण कर दो।

*** *** ***

श्रोता—भगवान्‌के अनेक नाम बताये हैं, उनमें हमलोगोंके लिये कौन-सा नाम श्रेष्ठ है? इस कलियुगमें कौन-से नामसे जल्दी कल्याण होता है?

स्वामीजी—ऐसे तो 'राम'-नामको सबसे श्रेष्ठ बताया गया है—***'राम सकल नामन्ह ते अधिका'*** (मानस, अरण्य० ४२। ४)। परन्तु आपको जो नाम हृदयसे प्यारा लगे, वही नाम आपके लिये सर्वश्रेष्ठ है। आप जो नाम जपते हो, जिसपर आपकी श्रद्धा है, जिसमें आपका प्रेम है, जिसपर आपका विश्वास है, वह नाम आपके लिये श्रेष्ठ है। उसीका जप करनेसे आपकी निष्ठा बनेगी। मेरी तो यही प्रार्थना है कि उस नामको आप छोड़ना मत। कोई सन्त-महात्मा कुछ भी कह दें, उसको छोड़ना नहीं। उसमें तत्परतासे लगे रहो। उससे आपकी निष्ठा बनेगी।

श्रोता—स्वप्नमें यदि भगवान्‌के दर्शन होते हों तो उसको हम भगवत्प्राप्ति मान सकते हैं क्या?

स्वामीजी—भगवान्‌के दर्शन होनेपर किसी बातकी किंचिन्मात्र भी कोई कमी रहती ही नहीं। अगर ऐसा अनुभव है तो मान लो। गीतामें आया है—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥

(गीता ६। २२)

'जिस लाभकी प्राप्ति होनेपर उससे अधिक कोई दूसरा लाभ उसके माननेमें भी नहीं आता और जिसमें स्थित होनेपर वह बड़े भारी दुःखसे भी विचलित नहीं किया जा सकता।'

भगवत्प्राप्ति होनेपर दुःख तो नजदीक नहीं आता और महान् आनन्द प्राप्त हो जाता है। यह नहीं हुआ, तबतक भगवत्प्राप्ति नहीं हुई। कोई आदमी अपनी ऊँची स्थितिकी कसौटी लगाना चाहे तो उसके लिये गीताभरमें उपर्युक्त श्लोक सबसे श्रेष्ठ है!

भगवत्प्राप्ति हुई कि नहीं हुई—यह माननेकी चीज नहीं है। प्यास लगनेपर जलसे तृप्ति हो जाती है, भूख लगनेपर अन्नसे तृप्ति हो जाती है तो यह तृप्ति फिर मिट जाती है। परन्तु भगवत्प्राप्तिसे होनेवाली तृप्ति कभी मिटती नहीं।

*** *** ***

अनुकूलतामें राजी होना और प्रतिकूलतामें नाराज होना संसारके सम्बन्धको दृढ़ करता है। इससे बड़ी भारी हानि होती है। संसारमें हमारी जो आसक्ति है, प्रियता है, खिंचाव है, अच्छापन दीखता है, यह हमारी बड़ी भारी हानि है! यह चौरासी लाख योनियोंमें, नरकोंमें ले जानेवाली चीज है। इसलिये अनुकूलता-प्रतिकूलता आये तो उसकी परवाह मत करो और आर्त होकर भगवान्‌को 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' पुकारो। इससे बड़ी-से-बड़ी कठिनता मिट जायगी और बहुत सुगमतासे परमात्मप्राप्तिका रास्ता मिल जायगा।

प्रतिकूलतामें प्रसन्न होना चाहिये। अपना लाभ प्रतिकूलतामें है। कारण कि प्रतिकूलतामें पापोंका नाश होता है तथा वर्तमानमें उन्नति होती है। अनुकूलतामें पुण्योंका नाश होता है तथा पतन होता है। आपको पापोंका नाश करना है कि पुण्योंका नाश करना है?

जितने अच्छे साधु हैं, ब्राह्मण हैं, पढ़े-लिखे हैं, उन्होंने पढ़ाईमें दुःख भोगा है। परन्तु कलियुगमें विद्यार्थी सुखी होते हैं—'**विद्यार्थिनो कलियुगे सुखिनो भवन्ति**'! आजकल विद्यार्थियोंके लिये जितनी अनुकूलता, सुख-सुविधा कर दी है, उतनी विद्या नष्ट हो गयी है!

सुखार्थी चेत् त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी च त्यजेत् सुखम्।
सुखार्थिनः कुतो विद्या कुतो विद्यार्थिनः सुखम्॥

(चाणक्यनीति० १०। ३)

'यदि सुखकी इच्छा हो तो विद्याको छोड़ दे और यदि विद्याकी इच्छा हो तो सुखको छोड़ दे; क्योंकि सुख चाहनेवालेको विद्या कहाँ और विद्या चाहनेवालेको सुख कहाँ?'

बड़ी तंगी, कठिनता भोगनी पड़ती है, तब विद्या आती है। इसलिये कठिनतामें, प्रतिकूलतामें फायदा है। जो विद्यार्थी प्रतिकूलतामें पढ़ता है, वह अच्छा विद्वान् होता है। अनुकूलतामें पढ़नेवाले विद्वान् नहीं होते। पक्की बात है कि माँके पास रहनेकी अपेक्षा पिताके पास, पिताकी अपेक्षा शिक्षकके पास और शिक्षककी अपेक्षा सन्त-महात्माके पास रहनेवाला बालक श्रेष्ठ बनता है। बालकके साथ जितना ममताका सम्बन्ध होगा, उतना वह बिगड़ेगा। माँके मोहमें फँसा हुआ बालक अच्छा पढ़ नहीं सकता। कठिनता भोगनेवाला अच्छा विद्वान्, अच्छा सन्त-महात्मा बनता है।

साधकको यह सावधानी रखनी चाहिये कि जिस कर्मको करनेसे प्रतिकूलता आयी, वह कर्म नहीं करना है। अनुकूलतामें राजी और प्रतिकूलतामें नाराज होनेसे बहुत पतन होता है, आध्यात्मिक उन्नतिमें बड़ी बाधा लगती है। जान-बूझकर प्रतिकूलता नहीं लानी है, पर **अपने-आप प्रतिकूलता आ जाय तो उसमें राजी होना चाहिये कि अब हमारी उन्नति होगी!** इसमें सन्देह नहीं है। कुन्ती माताने भगवान्‌से वरदान माँगा है—

विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्॥

(श्रीमद्भा० १। ८। २५)

'हे जगद्गुरो! हमारे जीवनमें सर्वदा पद-पदपर विपत्तियाँ आती रहें, जिससे हमें पुनः संसारकी प्राप्ति न करानेवाले आपके दुर्लभ दर्शन मिलते रहें।'

ऐसा वरदान माँगनेवाले इतिहासमें बहुत कम मिलेंगे! जैसे कड़वी दवाई अच्छी नहीं लगती, ऐसे ही प्रतिकूलता बुरी लगती है। अनुकूलता भोगनेवाला साधु भी अच्छा नहीं होगा और विद्वान् भी अच्छा नहीं होगा। परन्तु प्रतिकूलता सहनेवाला साधु भी अच्छा होगा और विद्वान् भी अच्छा होगा। प्रतिकूलतामें

प्रसन्न रहनेवाला साधक भी अच्छा होगा और वह आध्यात्मिक उन्नतिमें आगे बढ़ेगा। इसलिये स्वतः-स्वाभाविक प्रतिकूलता आये तो वह भगवान्‌की कृपा है।

एक वृद्ध त्यागी सन्त थे। उनका जहाँ आदर-सत्कार होता, भिक्षा सुखसे मिलती, वहाँसे रात्रिमें उठकर चल देते कि यहाँ ज्यादा रहना ठीक नहीं। तात्पर्य है कि **सन्तोंको अनुकूलता अच्छी नहीं लगती। नमस्कार करना भी अच्छा नहीं लगता। कोई उनका आदर-सत्कार करे तो उनको सुहाता नहीं कि इससे हमारा पतन है।** भगवान्‌को भी दया नहीं आती! भक्त दुःख पाता है तो भगवान् पासमें रहते हुए, सर्वसमर्थ होते हुए भी देखते रहते हैं; क्योंकि इसमें इसका भला है!

हमारे शिक्षागुरु, जिनके पास मैं पढ़ता था, उनके पास कोई आरामसे नहीं रह सकता था। कई विद्यार्थी तो वहाँसे भाग जाते! सुबह चार बजे उठते और दस बजेतक पढ़ते! यद्यपि दुष्टोंके द्वारा दुःख देनेपर भी पापोंका नाश होता है, पर सन्त-महात्माओंके द्वारा जो ताड़ना मिलती है, उससे बहुत लाभ होता है; क्योंकि वे स्वार्थकी भावनासे कुछ नहीं करते।

गीर्भिर्गुरूणां परुषाक्षराभिस्तिरस्कृता यान्ति नरा महत्त्वम्।
अलब्धशाणोत्कषणान्नृपाणां न जातु मौलौ मणयो वसन्ति॥

(रसगंगाधर)

'जब मनुष्य गुरुजनोंकी कठोर शब्दोंसे युक्त वाणीद्वारा अपमानित किये जाते हैं, तभी वे महत्त्वको प्राप्त होते हैं, अन्यथा नहीं। जैसे, मणि भी जबतक शाणपर घिसकर उज्ज्वल नहीं की जाती, तबतक वह राजाओंके मुकुटमें नहीं जड़ी जाती।'

जैसे शाणपर घिसनेसे मणिका मैल नष्ट हो जाता है और वह चमक उठती है, ऐसे ही कठिनता सहनेसे भीतरका मैल नष्ट होता है और मनुष्य चमक उठता है, श्रेष्ठ हो जाता है। इसलिये प्रतिकूलता आनेपर डरो मत। जान-बूझकर प्रतिकूलता नहीं लानी है, पर प्रतिकूलता आ जाय तो खुशी मनानी चाहिये कि अब हमारी उन्नति होगी! **दुःख, कष्ट सहना अच्छे साधकोंका कर्तव्य होता है।** कष्ट सहकर वे अच्छे सन्त बनते हैं। आराम कामका नहीं होता। आरामसे स्वभाव बिगड़ता है, आदत बिगड़ती है।

*** *** ***

श्रोता—सब कुछ भगवान् हैं—यह बात बुद्धिके द्वारा तो समझमें आती है, पर जिससे तत्काल भगवत्प्राप्ति हो जाय, ऐसी मान्यता कैसी होती है?

स्वामीजी—साक्षात् होती है! स्थावर-जंगम सब साक्षात् भगवान्‌का स्वरूप है—ऐसा पक्का विश्वास हो जाय तो तत्काल भगवत्प्राप्ति होती है। जगत्‌की धारणा केवल आपने ही कर रखी है। गीताने साफ कहा है—'**ययेदं धार्यते जगत्**' (गीता ७। ५)। न भगवान्‌की दृष्टिमें जगत् है, न महात्माकी दृष्टिमें जगत् है। जगत् केवल आपकी कल्पनामें है। जगत् केवल आपका माना हुआ है और आप नहीं मानो तो मिट जायगा, मिट जायगा, मिट जायगा! इसमें कोई पराधीनता नहीं है, बिल्कुल स्वतन्त्रता है। आप नहीं मानो तो जगत् है ही नहीं, सच्ची बात है। जगत्‌में रहनेकी ताकत नहीं है। जगत्‌की ताकत केवल आपकी मान्यताके भीतर ही है। आप मानो तो जगत् रहेगा, आप नहीं मानो तो नहीं रहेगा। इसलिये आप छाती कड़ी करके, दाँत भींचकर मान लो कि यह भगवान् हैं.....यह भगवान् हैं.....यह भगवान् हैं! निहाल हो जाओगे! ऐसा माननेमें सब भाई-बहन स्वतन्त्र हैं।

भगवान्‌ने आपको जो स्वतन्त्रता दी है, वह जगत्‌को धारण करनेके लिये नहीं, प्रत्युत जगत्‌से अतीत

तत्त्वको प्राप्त करनेके लिये दी है। परन्तु आपने जगत्‌को पक्का कर लिया!

सब भगवान् हैं—यह असली शरणागति है। इसमें एक मार्मिक बात है कि '**वासुदेवः सर्वम्**' में 'मैं' नहीं है अर्थात् सब कुछ वासुदेव है, मैं हूँ ही नहीं! अपने-आपको भगवान्‌में लीन कर दें। वासुदेवसे आप अपनेको अलग मत रखना। जो अपनेको वासुदेवसे अलग मानता है, उसको '**वासुदेवः सर्वम्**' कहनेका अधिकार नहीं है! भगवान्‌के चरणोंके शरण होना यह है कि भगवान् ही रह जायँ। **आप अलग रहते हो तो जगत्‌को धारण करते हो। जो अपने-आपको भगवान्‌में लीन कर देता है, वह जगत्‌को धारण नहीं करता।**

*** *** ***

एक विलक्षण बात है। जैसे आँखसे रूप ही दीखता है, शब्द नहीं सुनायी देता, कानसे शब्द ही सुनायी देता है, रूप नहीं दीखता, ऐसे ही हमारे पास जो अन्तःकरण है, इन्द्रियाँ हैं, उनसे संसार ही दीखता है, परमात्मा नहीं दीखते। स्वयं परमात्माका अंश है, इसलिये परमात्माको स्वयंसे ही देख सकते हैं, मन-बुद्धि-इन्द्रियोंसे नहीं। ये बातें सन्तोंकी वाणीमें इतनी साफ नहीं आतीं। उनमें मन लगानेकी बात आती है। गीतामें भी मन लगानेकी बात आती है—'**मय्येव मन आधत्स्व०**' (गीता १२। ८)।

स्वयंसे देखोगे तो परमात्मा दीखेगा, और मन-बुद्धि-इन्द्रियोंसे देखोगे तो संसार दीखेगा। आप स्वयं जिस श्रेणीके हो, उसी श्रेणीके परमात्मा हैं! इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, अहम् सब जड़ प्रकृतिके हैं। जो इनसे रहित हो जाता है, उस स्वयंको शान्ति प्राप्त हो जाती है—'**निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति**' (गीता २। ७१)। इसलिये साधक निराकार होता है, शरीर नहीं होता।

*** *** ***

श्रोता—स्वयंसे भगवान्‌को देखनेका अभ्यास कैसे करें?

स्वामीजी—अभ्याससे भगवान्‌के दर्शन कभी होनेके हैं ही नहीं! अभ्याससे दर्शन नहीं होते, प्रत्युत भीतरकी लालसासे दर्शन होते हैं। मैं भगवान्‌के बिना जी नहीं सकता, प्राण छूट जायँगे—ऐसा होगा तो दर्शन हो जायँगे। **जप, ध्यान, कीर्तन, पाठ-पूजा, तीर्थ आदि करनेसे भगवान्‌के दर्शन नहीं होते। ऐसी दशा हो जाय कि भगवान्‌के बिना मेरे प्राण निकल जायँगे, तो जरूर मिल जायँगे। इसके सिवाय और किसी उपायसे नहीं मिलेंगे, नहीं मिलेंगे, नहीं मिलेंगे! पक्की बात है!** आप उपाय करके भगवान्‌को वशमें कर लो—यह होनेका है ही नहीं! कभी वहम भी मत रखना कि इतना जप करनेसे हो जायगा, ध्यान करनेसे हो जायगा, चिन्तन करनेसे हो जायगा। वे केवल लालसासे मिलते हैं। लालसा भी सच्ची हो तो मिलेंगे, नहीं तो भले ही मर जाओ, नहीं मिलेंगे। नकली लालसा होगी तो भले ही मर जाओ, भगवान् किंचिन्मात्र भी परवाह नहीं करेंगे!

संसारको तृणवत् समझनेवाले, बड़े-बड़े विरक्त, त्यागी मनुष्य सन्त हो सकते हैं, महात्मा हो सकते हैं, पर भीतरकी लगनके बिना उनको भी भगवान् नहीं मिल सकते! भगवान्‌को किसी कीमतसे नहीं खरीद सकते। भगवान् और उनके भक्त किसी कीमतसे नहीं खरीदे जा सकते। कभी स्वप्नमें भी मत सोचना!

श्रोता—लालसा कैसे जगे?

स्वामीजी—संसारकी लालसा बिल्कुल छोड़ दो, जग जायगी। संसारकी किंचिन्मात्र भी लालसा न रहे। जीनेकी भी इच्छा न रहे। संसारकी इच्छा रखते हुए भगवान्‌की लालसा नहीं जगेगी।

आप तत्त्वज्ञ हो सकते हो, जीवन्मुक्त हो सकते हो, पर भगवान् मिल जायँ—यह बात नहीं है।

भगवान्‌के मिलनेकी बात निराली है! भगवान्‌की बात ज्ञानी भी समझ नहीं सकते! तत्त्वज्ञ, जीवन्मुक्तमें भी भगवान्‌को समझनेकी ताकत नहीं है! परन्तु गायकी हुंकारसे भी भगवान् आ जाते हैं! भगवान् क्या हैं, समझते नहीं!

श्रोता—क्या भगवान्‌के मनमें भी हमसे मिलनेकी लालसा होती है?

स्वामीजी—बड़ी भारी लालसा होती है! उनके जैसी लालसा किसीकी नहीं है! उनके मनमें सबसे मिलनेकी लालसा है। उस लालसाके कारण ही आप किसी भी परिस्थितिमें टिकते नहीं, टिक सकते नहीं!

भगवान् बहुत विचित्र हैं! वे एक गायको, बछड़ेको दर्शन दे देंगे, पर बड़े सन्त-महात्मा, तत्त्वज्ञ, जीवन्मुक्तको दर्शन नहीं देंगे! उनको सच्चा प्रेम चाहिये। नकली प्रेमसे आप मर जाओ तो भी आयेंगे नहीं! सच्चा प्रेम हो तो वे आ जायँगे। प्रेमके कारण उन्होंने करमाबाईका खीचड़ खा लिया! प्रेम सबसे विलक्षण है!

श्रोता—यदि भगवान्‌के मनमें भी हमसे मिलनेकी इच्छा है तो वे आकर दर्शन क्यों नहीं दे देते?

स्वामीजी—भगवान्‌ने आपको अधिकार दिया है। उस अधिकारके अनुसार आप सोचो तो वे आ जायँगे। अधिकार तो दिया है प्रेमका, आप करते हो मोह तो वे कैसे आयेंगे? आपको मोहका, अज्ञानका, मूढ़ताका, भोगोंका, संग्रहका अधिकार नहीं दिया है। भगवान्‌ने मनुष्यमात्रको प्रेमका अधिकार दिया है। मनुष्यमात्र भगवान्‌को प्राप्त कर सकता है। परन्तु आप भोगोंमें उलझ गये! भगवान् जबर्दस्ती नहीं करते, किसीके अधिकारको कभी नहीं छीनते। भगवान् भावके भूखे हैं।

*** *** ***

श्रोता—हम किसीका बुरा नहीं चाहते हैं, पर कभी-कभी न चाहते हुए भी मनसे बुरा चिन्तन हो जाता है! क्या करना चाहिये?

स्वामीजी—'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारो। यह सबकी दवाई है! 'हे नाथ! मैं परवश हूँ! मैं चाहता नहीं हूँ, फिर भी बुरा चिन्तन आ जाता है! हे नाथ! कृपा करो'। इस तरह भगवान्‌को पुकारो।

अपनी कमजोरीका अनुभव करो और भगवान्‌की कृपापर विश्वास करो, फिर सब ठीक हो जायगा।

श्रोता—कर्म, उपासना और ज्ञान अलग-अलग होते हुए भी क्या एक-दूसरेके पूरक हैं?

स्वामीजी—हाँ, पूरक हैं। तीनों साथमें रहते हैं। एक मुख्य रहता है, शेष दोनों गौण रहते हैं।

*** *** ***

श्रोता—भारतवर्ष-जैसा पवित्र और आस्तिक देश दूसरा कोई नहीं है, फिर भी इसमें इतने पाप क्यों हो रहे हैं?

स्वामीजी—जो इस देशके मुख्य आदमी हैं, वे आस्तिक नहीं हैं। यहाँकी जनतामें तो आस्तिक-भाव है, पर जिनके हाथमें सत्ता (राज्य) है, वे भगवान्‌के भक्त नहीं हैं। उनकी भगवान्‌की तरफ रुचि नहीं है। जनताकी भी रुचि विदेशी सभ्यताकी तरफ है।

आप सत्संग करनेवाले भी चोटी नहीं रखते! मेरे कहनेपर भी नहीं रखते! मेरा कितना आदर है, आप ही सोचो! भारतवर्षका पतन इसलिये हो रहा है कि जो आदरणीय पुरुष हैं, उनका तो निरादर हो रहा है और जो निरादर करनेलायक हैं, उनका आदर हो रहा है—

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यानां तु व्यतिक्रमः।

त्रीणि तत्र भविष्यन्ति दुर्भिक्षं मरणं भयम्॥

(स्कन्दपुराण, मा० के० ३। ४८; पञ्चतन्त्र, काको० १९१)

'जहाँ अपूज्य व्यक्तियोंकी पूजा होती है और पूज्य व्यक्तियोंका निरादर होता है, वहाँ तीन बातें होंगी ही—अकाल पड़ेगा, मृत्यु होगी और भय होगा!' तरह-तरहके उपद्रव होंगे, शान्तिसे रह नहीं सकेंगे! यह सिद्धान्त है।

चोटी रखना मेरा आदर नहीं है, प्रत्युत शास्त्रका आदर है। आप शास्त्रका आदर करते नहीं, भगवान्‌का आदर करते नहीं! फिर देशकी अच्छाई क्या करे? देश बड़ा अच्छा है, पर आप बात कितनी मानते हो? मेरे कहनेपर भी आप चोटी नहीं रख सकते, फिर मेरी क्या इज्जत की आपने? मैं आपसे कोई भेंट-पूजा नहीं चाहता! यह भी नहीं चाहता कि आप भिक्षा भी दो! दो चाहे मत दो, आपकी मरजी है। मेरा आग्रह बिल्कुल नहीं है। विचार करो कि आप मेरेको क्या दे सकते हो और क्या देते हो? एक चोटी रखनेके लिये कहता हूँ, वह भी आप नहीं रखते! यह दशा है सत्संग करनेवालोंकी! फिर जो सत्संगमें आते ही नहीं, उनकी क्या दशा होगी! महान् अधर्म फैल रहा है! भारतकी जो संस्कृति है, उसकी तरफ ध्यान नहीं है! चोटी न रखकर आपने क्या विशेषता प्राप्त कर ली, बताओ? चोटी न रखनेका आपने क्या लाभ उठाया, बताओ?

मेरे मनमें कल्याणकी नयी-नयी बातें पैदा होती हैं। पर मेरे मनमें स्वप्नमें भी ऐसा नहीं है कि ये चोटी नहीं रखते, मेरा कहना नहीं मानते, इसलिये इनको ये बातें नहीं बतायेंगे। मैं आपके कल्याणकी बढ़िया-से-बढ़िया बात बताता आया हूँ। आप मेरी बात नहीं मानते—इस बातका मेरेपर किंचिन्मात्र भी असर नहीं है। आपने पूछा है, तब मैंने उपर्युक्त बात कही है। आप सोचो कि मेरे वचनोंका कितना आदर करते हो? आप सुननेके लिये आते हो—यह आपकी बड़ी कृपा मानता हूँ! मैं अपनी दृष्टिमें बढ़िया-से-बढ़िया बातें आपको सुनाता हूँ तो आपपर एहसान नहीं करता हूँ!

*** *** ***

चौरासी लाख योनियोंमें किसी भी शरीरके साथमें आज आपका मोह नहीं है तो इस शरीरके साथमें आप मोह क्यों रखते हैं? इसपर विचार करो तो बड़ा भारी लाभ है! देहका अभिमान रखनेपर सब दोष आ जाते हैं—'**देहाभिमानिनि सर्वे दोषाः प्रादुर्भवन्ति**'। देहका अभिमान छोड़ दो तो दोष मिट जायँगे। आपने चौरासी लाख योनियाँ छोड़ दीं तो यह शरीर भी छोड़ना पड़ेगा। कोई है माईका लाल जो कहे कि मैं यह शरीर नहीं छोड़ूँगा!

विचार करें, जो चीज मिलनेवाली है, वह मिलेगी ही और जो नहीं मिलनेवाली है, वह नहीं मिलेगी तो फिर कामना करनेका क्या उपयोग हुआ? लोग दुःख पा रहे हैं तो क्या वे दुःखकी कामना करते हैं? बीमारी आ जाती है तो क्या वे बीमारीकी कामना करते हैं? बिना चाहे मकान गिर जाता है, चोट लग जाती है। ऐसे ही धन भी बिना चाहे मिल जाता है। जमीन खोदनेपर धन मिल जाता है। हैदराबादमें एक तिजोरी नदीमें बहकर आ गयी और उसको पानेवाला व्यक्ति धनी बन गया। यह सच्ची घटना है!

प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्या
दैवोऽपि तं लङ्घयितुं न शक्तः।
तस्मान्न शोचामि न विस्मयो मे
यदस्मदीयं न हि तत्परेषाम्॥

(पञ्चतन्त्र २। ११३; गरुड़पुराण आचार० ११३। ३२)

'प्राप्त होनेवाली वस्तु मनुष्यको मिलती ही है, विधाता भी उसको रोकनेमें समर्थ नहीं है। इसलिये न तो (वस्तु न मिलनेपर) मैं शोक करता हूँ और न (वस्तु मिलनेपर) मुझे आश्चर्य ही होता है; क्योंकि जो वस्तु मेरी है, उसे दूसरा कोई नहीं ले सकता।'

ये चार बातें याद रखो। जो चीज हमारे पास आनेवाली है, वह चाहो तो भी आयेगी, न चाहो तो भी आयेगी। जो नहीं आनेवाली है, वह चाहो तो भी नहीं आयेगी, न चाहो तो भी नहीं आयेगी। इसलिये कामना करना निरर्थक है। आप कामनारहित हो जाओ तो आपको कोई कमी नहीं रहेगी। आप सन्त-महात्मा हो जाओगे!

*** *** ***

आपका स्वरूप ज्ञानमात्र है। जाननामात्र आपका स्वरूप है, जाननेवाला आपका स्वरूप नहीं। जैसे यह प्रकाश है, ऐसे ज्ञानका एक प्रकाश है। वह प्रकाशरूप आप हो। आप प्रकाश करनेवाले नहीं हो। जैसे सूर्यके प्रकाशमें सब काम होते हैं, पर सूर्यमें प्रकाश करनेका अभिमान नहीं है। तात्पर्य है कि सूर्य सम्पूर्ण संसारको प्रकाशित करता है, पर 'मैं प्रकाशित करता हूँ'—यह अभिमान सूर्यमें नहीं है। जितने भाई-बहन हैं, सबका स्वरूप परमात्माका अंश है। आपका स्वरूप केवल सत्तामात्र (होनापन) है। सत्तावाले आप नहीं हो। उस सत्तामात्र स्वरूपमें अहंकार नहीं है, कर्तृत्व-भोक्तृत्व नहीं है। कर्तृत्व-भोक्तृत्व संसार है।

सूर्यके प्रकाशमें एक वेदपाठ करता है, एक शिकार करता है। परन्तु वेदपाठ करनेका पुण्य और शिकार करनेका पाप सूर्यको नहीं लगता। प्रकाश उनसे लिप्त नहीं होता। ऐसे ही आप मिट्टी अथवा गोबरके लौंदेकी तरह किसीसे चिपको मत, प्रत्युत रबरकी गेंदकी तरह निर्लिप्त रहो। चिपकना ही पाप है, बन्धन है। प्राप्तकी ममता और अप्राप्तकी कामना करना ही चिपकना है। इसलिये सब विहित कार्य निर्लेप होकर करो।

भगवत्प्राप्तिमें सांसारिक सुखकी आसक्ति बड़ी बाधक है। सुखकी चाहना मूलमें भगवान्‌की चाहना है। भगवान्‌की चाहनाको न समझनेसे संसारसे सुखकी आशा होती है।

श्रोता—जीवन्मुक्त महापुरुषमें संसारकी कोई आसक्ति रहती नहीं, फिर उनको भगवान्‌के दर्शन क्यों नहीं होते?

स्वामीजी—दर्शनकी इच्छा चाहिये। इच्छाके बिना दर्शन नहीं होते। जीवन्मुक्त हो जायगा, बन्धन मिट जायगा, शान्ति मिल जायगी, आनन्द रहेगा, दुःख कोई तरहका नहीं रहेगा, पर भगवान्‌के दर्शन नहीं होंगे। जैसे, माँकी इच्छा बालक करता नहीं है, प्रत्युत स्वतः माँकी इच्छा होती है, माँ अच्छी लगती है, प्यारी लगती है। ऐसे ही स्वतः भगवान्‌के दर्शनकी इच्छा होनी चाहिये।

वास्तवमें जीवन्मुक्त महापुरुषको भगवान्‌के दर्शनकी कोई जरूरत ही नहीं है। उसमें कोई कमी नहीं है। उसमें केवल प्रेमकी कमी रहती है। प्रेम भक्तिमें है।

श्रोता—तत्त्वज्ञान और भगवत्प्राप्ति एक हैं या अलग-अलग?

स्वामीजी—दोनों एक ही हैं। तत्त्वज्ञान हो गया तो भगवत्प्राप्ति हो गयी, कल्याण हो गया तो भगवत्प्राप्ति हो गयी, भगवान्‌के दर्शन हो गये तो भगवत्प्राप्ति हो गयी।

श्रोता—*'राम नाम अवलंबन एकू'* एक राम-राम करता रहे तो क्या उससे कल्याण हो जायगा?

स्वामीजी—बिल्कुल हो जायगा, पर साथमें भाव पूरा चाहिये। भावके बिना नहीं होगा।

श्रोता—भाव फिर क्या हो?

स्वामीजी—भगवान् मेरे हैं, और कोई मेरा नहीं है—यह भाव हो।

*** *** ***

मूलमें जितने अंशमें संसारको पकड़ रखा है, उतने अंशके त्यागकी आवश्यकता है। त्याग करनेके लिये परमात्मामें रुचि होनेकी आवश्यकता है। जो परमात्माकी रुचि है, उसी जगह संसारकी आसक्ति पैदा हुई है। भीतरमें भूख (आवश्यकता) तो थी परमात्माकी, पर संसारके पदार्थोंकी भूख पैदा कर ली। परमात्माकी आवश्यकताको भूल गये और संसारकी कामना करने लगे। परमात्माकी आवश्यकता जाग्रत् हो जाय तो संसारकी कामना मिट जायगी। आवश्यकताकी पूर्ति होती ही है और कामनाकी निवृत्ति होती ही है। कामनाओंकी पूर्ति जन्म-जन्मान्तरोंतक कभी होती ही नहीं! उनका तो त्याग ही करना पड़ेगा।

जड़ताकी तरफ वृत्ति मनुष्यको अन्धा बनाती है, विवेक नहीं होने देती। जड़ताका त्याग कर दिया जाय तो शान्ति मिलती है, चिन्मयताकी प्राप्ति होती है। शान्तिसे सुख मिलता है—'**अशान्तस्य कुतः सुखम्**'।

*** *** ***

श्रोता—'*मनीषीकी लोकयात्रा*' पुस्तकमें लिखा है कि परलोकमें रामकृष्ण परमहंस मिले, अमुक-अमुक व्यक्ति मिले और उनकी आपसमें पहचान भी हुई, तो प्रश्न यह है कि जब यह शरीर छूट जाता है, तब शरीरकी आकृति भी यहीं रह जाती है, फिर परलोकमें किस आकृतिसे आपसमें मिलना होता है?

स्वामीजी—वह आकृति और तरहकी होती है। आकाशमें अलग-अलग भवन हैं। वह आकृति आकाशमें होती है। उनका शरीर पार्थिव दीखता है, पर वास्तवमें वह पार्थिव नहीं होता। उनकी आकृति, उनका चेहरा पहले-जैसा ही होता है। भूत-प्रेतकी आकृति भी वैसी ही रहती है। मृत्युके समय जैसा कपड़ा होता है, वैसा ही कपड़ा भूत-प्रेतमें दीखता है। भूत-प्रेतका वायुप्रधान शरीर होता है। देवताओंका शरीर तेजप्रधान होता है। जिस धातुका सूर्य है, उसी धातुका देवताओंका शरीर होता है। हमारा शरीर पृथ्वीप्रधान है। वरुणदेवता आदिका शरीर जलप्रधान है।

श्रोता—मीराबाई तो भगवान्‌में लीन हो गयी थीं। फिर वे परलोकमें कैसे मिलीं?

स्वामीजी—भगवान्‌में लीन होनेपर भी भक्त वैसा ही रहता है। इसमें दो बातें हैं। भक्तमें अलग रहनेकी भावना होती है तो वे अलग रहते हैं। परन्तु जो भगवान्‌में लीन हो जाते हैं, उनकी आकृति नहीं दीखती। अगर उनकी आकृति दीखती है तो उस आकृतिमें स्वयं भगवान् आते हैं और भक्तोंको दर्शन देते हैं। परमात्मा भी निराकार है और भक्त भी निराकार है। साधक भी निराकार होते हैं।

श्रोता—क्या परलोकमें भी सत्संग, भजन-ध्यान होता है?

स्वामीजी—हाँ, होता है। वहाँ तुलसीकृत रामायणका भी पाठ होता है—ऐसी बात मैंने सुनी है। रामायण बहुत विचित्र ग्रन्थ है!

श्रोता—हरिआश्रय और परमविश्राम एक ही हैं या अलग-अलग?

स्वामीजी—तत्त्वसे दोनों एक ही हैं। हरिआश्रय साधन है और परमविश्राम साध्य है। मेरा कुछ नहीं है और मेरेको कुछ नहीं चाहिये—इसके बाद हरिआश्रय और परमविश्राम है। परमविश्रामके बाद

फिर कुछ करना बाकी नहीं रहता। गोस्वामीजीने लिखा है—***'पायो परम बिश्रामु'*** (मानस, उत्तर० १३० छं०)।

*** *** ***

शरीरके साथ मोह आध्यात्मिक उन्नतिमें बड़ी भारी बाधा है। चौरासी लाख योनियोंमें कोई भी शरीर हमारे साथमें नहीं रहा तो यह शरीर साथमें कैसे रहेगा? जब लाखों शरीर छोड़ दिये तो फिर इस एक शरीरमें मोह क्यों? इसको भी छोड़ना ही पड़ेगा। शास्त्रोंमें, पुस्तकोंमें, व्याख्यानमें ऐसी बात सुननेको नहीं मिलती! इसलिये इस बातपर विशेष ध्यान देना चाहिये कि शरीर अपना नहीं है। कारण कि आप परमात्माके अंश हो। इस तरफ बहुत साधकोंका ध्यान नहीं है! इसलिये यह नयी बात है!

लोगोंमें स्वाभाविक यह वृत्ति है कि जैसे हम सांसारिक वस्तुओंकी प्राप्ति करते हैं, उसी तरहसे परमात्माकी प्राप्ति होगी। ऐसी बात नहीं है। परमात्माकी प्राप्तिके लिये हमें नाशवान् वस्तुओंसे ऊँचा उठना है, तब परमात्माकी प्राप्ति होगी। नाशवान् पदार्थोंके द्वारा परमात्माकी प्राप्ति नहीं होगी। नाशवान् वस्तुओंसे प्राप्ति होती नहीं और अविनाशी हमारे हाथ लगता नहीं, तो फिर हम क्या करें—ऐसा विचार करके निराश नहीं होना है। जितनी भगवान्‌की विशेष याद आती है, उतनी अपनी उन्नति होती है।

इस तरफ ध्यान दो कि हमारा कौन है? सबकी सार बात है कि हमारे भगवान् हैं। भगवान्‌के सिवाय कोई अपना नहीं है। यह हाड़-मांसका शरीर भी अपना नहीं है। यह केवल दूसरोंकी सेवा करनेके लिये है। इसलिये भगवान्‌को याद रखो। यह बात भगवान्‌से बार-बार कहो कि 'हे नाथ! हे मेरे स्वामिन्! मैं आपको भूलूँ नहीं। ऐसी कृपा करो कि मैं आपको भूलूँ नहीं'। **जितनी भगवान्‌की याद रहेगी, उतनी आपकी उन्नति होगी, उतने आप संसारसे ऊँचे उठोगे।** यह बात कई जगह लिखी गयी है कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। इस बातका प्रचार हो रहा है। परन्तु कोरी लिखी हुई बात कामकी नहीं, अपने हृदयसे पुकार करो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। आप भगवान्‌को भूलें नहीं तो सब काम ठीक होगा—**'हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम्'** (श्रीमद्भा० ८। १०। ५५) अर्थात् भगवान्‌की स्मृति सम्पूर्ण विपत्तियोंका नाश करनेवाली है। यह सार चीज है।

भगवान्‌की तरफ चलनेमें आप अपने अवगुणोंको देखकर निराश मत हों। हृदयमें विश्वास रखो कि हम कैसे ही हों, भगवान्‌के हैं। भगवान्‌की आशाको दृढ़ रखो कि मेरेको तो भगवान् मिलेंगे ही! जैसे किसी ब्राह्मण अथवा साधुको निमन्त्रण दे दिया, आसनपर बैठा दिया, पाटिया रख दिया, अब भोजन देंगे कि नहीं देंगे—यह शंका निरर्थक है। अगर भोजन नहीं देना था तो इतना काम क्यों किया? क्यों बुलाया? क्यों बैठाया? क्यों पाटा रखा? ऐसे ही आपको कलियुगके समयमें यहाँ गंगाके किनारे बुलाया, जबकि लोग विश्वासघात कर रहे हैं, अपने साथियोंके साथ भी द्वेष कर रहे हैं, भला करनेवालोंके प्रति बुरा कर रहे हैं, कृतघ्न हो रहे हैं, ऐसे जमानेमें हमारेको उत्तराखण्डकी भूमिमें, सेठजीकी तपोभूमिमें, गंगाजीके किनारे लाकर बैठा दिया! कोई दो-तीन दिन भी गंगाजीके किनारे रहकर आये तो गाँववाले सब उनको नमस्कार करते और कहते कि गंगावासी आये हैं! अभी आप महीनों गंगाजीके किनारे रहते हैं तो यह भगवान्‌की विलक्षण कृपा है! इसलिये भगवान्‌की कृपाकी तरफ ध्यान दो और निराश मत होओ। अपना काम भगवान् करेंगे; क्योंकि उन्होंने निमन्त्रण दे दिया तो अब भोजन नहीं देंगे? हमारेको क्यों बुलाया? ***'न्योतो स्वामी सिंह बराबर अणन्योतो है गाय'*** बिना निमन्त्रण आया व्यक्ति गायकी तरह और निमन्त्रण देकर बुलाया व्यक्ति सिंहकी तरह होता है कि निमन्त्रण दिया है तो लाओ! गंगाजीके किनारे, उत्तराखण्डकी भूमिमें, सेठजीकी तपोभूमिमें हमारेको बुलाया है तो आपको हमारा उद्धार करना पड़ेगा! नहीं तो क्यों बुलाया? हमने कब कहा कि बुलाओ? ऐसे घोर कलियुगमें हम सब छोड़कर

आपके पास यहाँ क्यों आये? आपको कल्याण करना ही पड़ेगा। इस तरह भगवान्‌में अपनापन करके एहसान करे तो भगवान् राजी होते हैं!

हम भले ही सब तरहसे खराब हैं, पर घर छोड़कर यहाँ गंगाजीके किनारे आये हैं तो इस एक बातके कारण भगवान्‌को हमारा कल्याण करना पड़ेगा। केवड़ेके पौधेमें अनेक अवगुण होते हैं, पर एक सुगन्धरूप गुण उसके सब अवगुणोंको ढक देता है—

व्यालाश्रयापि विफलापि सकण्टकापि
वक्रापि पङ्किलभवापि दुरासदापि।
गन्धेन बन्धुरसि केतकि सर्वजन्तो-
रेको गुणः खलु निहन्ति समस्तदोषान्॥

(चाणक्यनीति० ७। २१)

'हे केतकि! यद्यपि तू साँपोंका घर है, फलसे भी रहित है, काँटोंसे भी युक्त है, टेढ़ी भी है, कीचड़में उत्पन्न होती है, कठिनतासे मिलती है, तथापि तू एक सुगन्धरूपी गुणके कारण सब प्राणियोंकी प्रिय हो रही है। इससे निश्चय होता है कि एक भी गुण समस्त दोषोंका नाश कर देता है।'

*** *** ***

श्रोता—जब परमात्मा सब जगह परिपूर्ण हैं तो फिर वे दीखते क्यों नहीं? दूर क्यों मालूम देते हैं?

स्वामीजी—जो उत्पन्न और नष्ट होनेवाली चीजोंके द्वारा, मन-बुद्धि-इन्द्रियोंके द्वारा परमात्माकी प्राप्ति करना चाहता है, उसको परमात्मा दूर दीखते हैं। परमात्माकी प्राप्ति कर्मोंके द्वारा नहीं होती, प्रत्युत अपनेपनके भावसे होती है। अपने-आपको छोड़कर मन-बुद्धिको लगानेसे उनकी प्राप्ति नहीं होगी। अपने-आपको परमात्मामें लगाओ। आप परमात्माके अंश हो।

अहम् जाग्रत् और स्वप्नमें रहता है। सुषुप्तिमें अहम् नहीं रहता, प्रत्युत अविद्यामें लीन हो जाता है। अविद्यामें लीन होनेपर अहम् आपके साथ नहीं रहता। अतः आप अहम्‌से अलग हो। 'मैं हूँ'—ऐसा दीखता है, तो दीखनेवाली वस्तु आप नहीं हो। आप देखनेवाले हो। परन्तु देखनेवाले भी तब होते हो, जब वस्तुको देखते हो। जब आप नहीं देखते हो, तब आप देखनेवाले नहीं होते, प्रत्युत आप सत्तामात्र होते हो। अतः आप देखनेवाले (द्रष्टा) भी मत बनो। द्रष्टा बननेसे दृश्यके साथ सम्बन्ध होता है। दृश्यके साथ आपका सम्बन्ध नहीं है। आपका सम्बन्ध भगवान्‌के साथ है। इसलिये अपने-आपको भगवान्‌में लीन कर दो।

आप नाशवान् पदार्थोंके द्वारा भगवान्‌की प्राप्ति चाहते हैं, इसलिये भगवान् दूर दीखते हैं। अगर नाशवान् पदार्थोंको छोड़कर 'मैं भगवान्‌का हूँ'—इस प्रकार स्वयं भगवान्‌में लग जायँ तो भगवान् दूर नहीं दीखेंगे, प्रत्युत नजदीक दीखेंगे। कारण कि मैं भगवान्‌की चीज हूँ, भगवान्‌का अंश हूँ, भगवान्‌को ही चाहता हूँ। मनसे भगवान्‌का चिन्तन करना भी एक साधन है, पर यह साधन जल्दी मुक्ति देनेवाला नहीं है। आप खुद भगवान्‌के हो जायँ। **आपके और भगवान्‌के बीचमें मन, बुद्धि और अहंकार न रहें, तब भगवान्‌की प्राप्ति होगी।** परन्तु मन, बुद्धि और अहंकारके द्वारा भगवान्‌को प्राप्त करना चाहोगे तो भगवान् दूर दीखेंगे।

बालक माँमें मन नहीं लगाता, प्रत्युत स्वयं लगता है। इसी तरह साधक स्वयं भगवान्‌में लग जाय। मन-बुद्धिसे विमुख होकर भगवान्‌के सम्मुख हो जाय तो भगवान्‌की प्राप्ति हो जायगी। जो दूर होनेवाले

हैं, आपके साथ सदा नहीं रहते, उनको अपने साथ मानकर उनके द्वारा भगवान्‌की प्राप्ति चाहते हैं, इसलिये भगवान् दूर दीखते हैं।

अपने-आपको भगवान्‌में लगा दो और कोई इच्छा, कामना मत करो। भगवान्‌की भी इच्छा नहीं करनी है! मैं भगवान्‌का हूँ तो इच्छा क्या करें? कोई नहीं कहता कि माँकी तुम इच्छा करो। मैं माँका हूँ तो इच्छा क्या करें? बिना चाहे, बिना विवेक किये मेरी माँ है!

'मैं भगवान्‌का हूँ'—ऐसा माननेसे मैं-पन मिट जायगा और आपकी जगह भगवान् आ जायँगे।

श्रोता—तत्त्वज्ञान हो जानेके बाद मनुष्य तत्त्वमें लीन हो जाता है या वैकुण्ठमें जाता है?

स्वामीजी—दोनों ही बातें हैं। भक्तकी जैसी इच्छा होती है, वैसा होता है। अगर भगवान्‌पर छोड़ दे तो और बढ़िया है! अपनी कुछ भी इच्छा रखे ही नहीं कि कहाँ जाना है, क्या करना है। अपने-आपको ही भगवान्‌में लीन कर दे तो अपनी इच्छा कहाँ रही!

*** *** ***

लोगोंको यह दीखता है कि हम सच्चे हृदयसे परमात्माकी प्राप्ति चाहते हैं, पर परमात्मप्राप्तिकी बात बतानेवाला कोई है नहीं। परन्तु मैं कहता हूँ कि आज परमात्मा और उनकी प्राप्तिकी बात बतानेवाला—दोनों निकम्मे बैठे हैं! कोई पूछनेवाला नहीं है! कोई सच्चे हृदयसे चाहनेवाला नहीं है! लोग दो चीजोंको चाहते हैं—रुपये इकट्ठे हो जायँ और भोग भोग लें। गीतामें लिखा है कि जो रुपये इकट्ठे करना चाहता है और भोग भोगना चाहता है, वह परमात्मप्राप्तिका निश्चय भी नहीं कर सकता—

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते॥

(गीता २। ४४)

'उस पुष्पित वाणीसे जिनका अन्तःकरण हर लिया गया है अर्थात् भोगोंकी तरफ खिंच गया है और जो भोग तथा ऐश्वर्यमें आसक्त हैं, उन मनुष्योंकी परमात्मामें एक निश्चयवाली बुद्धि नहीं होती।'

जो भोग और संग्रह चाहता है, उसको परमात्माकी प्राप्ति नहीं होगी। परन्तु जो भोग और संग्रह नहीं चाहता, प्रत्युत परमात्माकी प्राप्ति चाहता है, उसको जरूर प्राप्ति होगी।

भगवान्‌को पुकारो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। यह सबके लिये बढ़िया चीज है। **'हे नाथ! हे मेरे प्रभो! हे मेरे स्वामिन्! मैं आपको भूलूँ नहीं' पुकारो तो सब काम ठीक हो जायगा।** सच्चे हृदयसे भगवान्‌में लग जाओ, फिर नफा-ही-नफा है, नुकसान है ही नहीं! चलते-फिरते, उठते-बैठते, हरदम कहते रहो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। यह बहुत बढ़िया मन्त्र है। कोई भाई हो, बहन हो, छोटा हो, बड़ा हो, बालक हो, बूढ़ा हो, सबके लिये यह बढ़िया उपाय है। जरूर काम सिद्ध होता है। क्यों सिद्ध होता है? कि मनुष्यशरीर मिला ही इसके लिये है। यह बातें सुननेको भी मिलती नहीं, आपलोग परवा नहीं करते हो!

*** *** ***

शरीर मैं नहीं हूँ—इसमें ज्यादा जोर नहीं लगाना है। **एक सिद्धान्तकी बात है कि किसी दोषको मिटानेके लिये ज्यादा जोर लगाना उस दोषको पक्का करना है।** कारण कि ज्यादा जोर लगानेसे सिद्ध होता है कि वह दोष मजबूत है। अतः हम तो दोषको मिटानेकी चेष्टा करते हैं, पर उसका फल उल्टा होता है! वह दोष दृढ़ हो जाता है! **दोषको न मिटाना है, न उसका अनुमोदन करना है, प्रत्युत उसकी उपेक्षा करनी है।** दोष अच्छा है—यह भी नहीं करना है और दोष खराब है—इस तरह उसके

पीछे भी नहीं पड़ना है, प्रत्युत दोष अच्छा नहीं है—इतना समझकर भजनमें, अपने साधनमें लगा रहे। दोष अच्छा नहीं है—इतना काफी है, ज्यादा जोर नहीं लगाना है। न विरोध करना है, न अनुमोदन करना है। न ठीक समझना है, न बेठीक समझना है। शरीर मेरा स्वरूप नहीं है, बस, इतना काफी है। भजनमें लगे रहो, अपने-आप छूट जायगा। प्रकृति स्वतः-स्वाभाविक हित करती है। ऐसा समझते रहना चाहिये कि भगवान्‌की कृपासे सब काम ठीक हो रहा है।

*** *** ***

भगवान्‌के साथ जिन्होंने विरोध किया, उनका भी उद्धार हो गया और जिन्होंने प्रेम किया, उनका भी उद्धार हो गया; परन्तु जो उदासीन रहे, उनका उद्धार नहीं हुआ। ऐसे ही दोषोंको दूर करना हो तो उनकी उपेक्षा करो। दोषोंके साथ जितना द्वेष करोगे और दूर करनेकी चेष्टा करोगे, उतने दोष प्रबल हो जायँगे; क्योंकि अपनी दृष्टिमें दोषोंको प्रबल मानकर ही दूर करनेकी चेष्टा करते हैं। वे दूर तभी होंगे, जब उनकी उपेक्षा करेंगे। इसलिये भक्तिमार्ग सुगम पड़ता है। ज्ञानमार्ग विवेकप्रधान होनेसे उसमें दोषोंको दूर करते हैं, इसलिये बहुत दूरतक जानेपर भी उनकी सत्ता रहती है। परन्तु भक्तिमार्गमें एक भगवान्‌के ही सम्मुख होनेसे दोष अपने-आप दूर हो जाते हैं; क्योंकि दोषोंकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। सत्ता गुणोंकी है। गुणोंका अभाव ही दोषरूपसे प्रकट होता है। सभी दोष गुणोंकी कमीसे ही पैदा होते हैं। अगर उनको दूर करनेमें ज्यादा जोर लगायेंगे तो उनकी सत्ता दृढ़ हो जायगी। इसलिये उनकी उपेक्षा करके, उनसे उदासीन होकर भगवान्‌में लग जायँ। दोष हैं कि नहीं हैं, उनसे अपना मतलब ही न रखें। भगवान्‌का भरोसा रखें। उनकी कृपासे सब ठीक हो जायगा।

भक्तिसे भक्ति पैदा होती है—**'भक्त्या सञ्जातया भक्त्या'** (श्रीमद्भा० ११। ३। ३१)। भक्तिका साधन भी भक्ति है और साध्य भी भक्ति है। जिनकी वृत्ति भगवान्‌की तरफ ही लगी हुई है, उनमें दोष जल्दी पैदा नहीं होते। परन्तु ज्ञानमार्गमें दोष जबर्दस्त होते हैं। कारण कि उसमें विवेक मुख्य है। विवेकमें सत् और असत् दोनों होते हैं। इसलिये जिसका त्याग करते हैं, उसकी सत्ता अपने मनमें रहती है। उसका त्याग करनेमें जितना जोर लगायेंगे, उतनी ही उसकी सत्ता दृढ़ होगी। इसलिये दोष जल्दी दूर होते नहीं; क्योंकि उन दोषोंको अपने द्वारा ही पुष्टि मिलती है। इसलिये दोषोंकी उपेक्षा करना, उदासीन रहना अच्छा है। उनसे द्वेष भी न करे और राग भी न करे। अगर उनमें राग, आसक्ति, प्रियता होगी तो दोष जायँगे कैसे? जितनी उपेक्षा बढ़िया है, उतना विरोध बढ़िया नहीं है। **भक्तिमार्गमें भगवान्‌में प्रेम है और दोषोंकी उपेक्षा है।** हम समझते हैं कि विरोधसे दोष दूर होंगे, पर वास्तवमें विरोधसे वे पुष्ट हो जाते हैं।

*** *** ***

श्रोता—आपने फरमाया कि परमात्मा तत्काल जाननेयोग्य, प्राप्त करनेयोग्य वस्तु है; परन्तु रामचरितमानसमें आया है—***'सोइ जानइ जेहि देहु जनाई'*** (मानस, अयोध्या० १२७। २)। जिसे भगवान् जनायेंगे, वही उन्हें जान पायेगा तो यह उन्हींपर निर्भर है, हमारेपर क्या निर्भर है?

स्वामीजी—निर्भर हमारेपर नहीं है, प्रत्युत भगवान्‌पर निर्भर है, पर जिम्मेवारी हमारेपर जरूर है। परमात्माकी प्राप्ति वर्तमानमें होनेवाली है—यह बात मैंने वर्षों पहले कही थी। मेरी यह बात बहुत पुरानी है। अब यह बात विशेषतासे प्रकट हुई है। मेरेको बहुत पहलेसे यह बात जँची हुई है कि **जब परमात्मा सब जगह परिपूर्ण है और जो परमात्माको चाहनेवाला है, उस जगह भी परमात्मा पूर्णरूपसे है तो उसको जल्दी प्राप्ति क्यों नहीं होगी?**

जड़के द्वारा चेतनकी प्राप्ति नहीं हो सकती—यह बात मैं बहुत वर्षोंसे कह रहा हूँ। मेरेको प्रमाण

मिलनेसे यह बात सबल होती है—यह बिल्कुल सही बात है। कई बातें ऐसी हैं, जो मेरे भीतर बैठी हैं और प्रमाण मिलनेपर सबल होती हैं। एक बात और बैठी हुई है, पर उसका विशेष प्रमाण मेरेको मिला नहीं! संसारमें गुणदृष्टि भी होती है और दोषदृष्टि भी होती है। उस दोषदृष्टिके विषयमें मेरेको एक बात जँची हुई है कि **तत्त्वज्ञ, जीवन्मुक्त, सन्त-महात्मामें अगर दोषदृष्टि हो जाय तो उनमें कोई गुण दीखेगा ही नहीं!** दूसरी जगह दोषदृष्टि होनेपर गुण भी दीखेगा और दोष भी दीखेगा। परन्तु जिनमें गुण-ही-गुण हैं, दोष है ही नहीं, उन जीवन्मुक्त महात्मामें दोषदृष्टि होनेपर कोरा दोष-ही-दोष दीखेगा, गुण दीखेगा ही नहीं। यह मेरे भीतर जँची हुई बात है। नारदजीने भी भगवान्‌से कहा—***'सदा कपट ब्यवहारु'*** (मानस, बाल० १३६) 'आप सदा ही कपटका व्यवहार करते हो। कपटके बिना कोई व्यवहार किया ही नहीं!'

कम-से-कम आप इतनी बात मान लें कि सब भगवान् हैं—**'वासुदेवः सर्वम्'** (गीता ७। १९)। यह बात सभी सत्संग करनेवालोंके भीतर जँच जानी चाहिये। यह सब संसार परमात्मासे ही निकला है। परमात्माके सिवाय और कहींसे आया हो तो बताओ? परमात्मासे निकला है तो फिर दूसरी चीज कहाँसे आयी? गेहूँके पौधेमें गेहूँके सिवाय और क्या है, बताओ? संसार बनानेके लिये भगवान्‌ने कहींसे माल मँगाया हो—ऐसा कहीं भी हमारे पढ़ने-सुननेमें नहीं आया। उपनिषदोंमें आया है कि वह एक ही अनेकरूपसे प्रकट हुआ है—**'सदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति'** (छान्दोग्य० ६। २। ३)। जब एक ही परमात्मा अनेकरूपसे हुए तो अनेकरूपसे परमात्मा ही हुए। दूसरी चीज आये कहाँसे? वे इतने रूपसे प्रकट हुए कि आप गिनती नहीं कर सकते, आपकी गिनती समाप्त हो जायगी!

श्रोता—गंदी-से-गंदी, मैली-से-मैली चीज है, जिसको देखते ही घृणा होती है, उसको परमात्मा कैसे मानें?

स्वामीजी—गीता कहती है—

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि॥

(गीता ७। १२)

'जितने भी सात्त्विक भाव हैं और जितने भी राजस तथा तामस भाव हैं, वे सब मुझसे ही होते हैं—ऐसा उनको समझो। परन्तु मैं उनमें और वे मुझमें नहीं हैं।'

राजस-तामस भाव भी मेरेसे होते हैं—ऐसा कहनेके बाद बाकी क्या बचा?

श्रोता—राजस-तामस तो भाव हुए। भाव इतने गन्दे नहीं हैं, पर गलीमें गन्दे पदार्थ पड़े हों तो?

स्वामीजी—भाव ही तो गंदा है! भावके सिवाय और कोई गंदी चीज है ही नहीं! भगवान्‌ने साफ कहा है कि मैं उनमें और वे मेरेमें नहीं हैं। तात्पर्य है कि उनमें मेरेको ढूँढ़ोगे तो मैं मिलूँगा नहीं। इसका अर्थ यह हुआ कि सात्त्विक, राजस और तामस एक जातिके हैं! सात्त्विक-से-सात्त्विक और तामस-से-तामस एक जातिके हैं! पृथ्वी और अहंकार एक जातिके हैं—**'भूमिरापोऽनलो वायुः०'** (गीता ७। ४)! मिट्टीका ढेला कहो, चाहे अहंकार कहो, दोनों भगवान्‌की अपरा प्रकृति होनेसे भगवान्‌का स्वरूप हैं। विचार करो, कोई गंदी-से-गंदी चीज है, पर वह भगवान्‌के सिवाय आयी कहाँसे?

*** *** ***

'अपने लिये कुछ नहीं करना है'—यह ज्ञानयोगकी बात है। ज्ञानयोगमें तीन बातें हैं—मेरा कुछ नहीं है, मेरेको कुछ नहीं चाहिये और मेरेको अपने लिये कुछ नहीं करना है। जब अनन्त ब्रह्माण्डोंमें

कुछ भी अपना नहीं है तो फिर शरीरमें अपनी चीज क्या हुई? जब अपना कुछ नहीं है तो फिर अपनेको क्या चाहिये? कुछ नहीं चाहिये। इस प्रकार प्राप्तमें ममता न हो और अप्राप्तकी कामना न हो तो फिर अपने लिये कुछ भी करना बाकी नहीं रहेगा। 'अपने' का अर्थ हुआ—ईश्वरका अंश।

ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥

(मानस, उत्तर० ११७। १)

ममता और कामना न रहनेपर अपना स्वरूप अर्थात् ईश्वरका अंश रहा। ईश्वरके अंशके लिये क्या करना है? इसलिये अपने लिये कुछ नहीं करना है।

श्रोता—शरीर-निर्वाहके लिये, उदरपूर्तिके लिये तो करना पड़ेगा?

स्वामीजी—शरीर-निर्वाहके लिये काम किससे करोगे? शरीरसे करोगे तो शरीर मेरा है ही नहीं। इस विषयको ठीक समझकर बोलो। मैंने आरम्भमें ही कह दिया कि मेरा कुछ नहीं है। जब मेरा कुछ नहीं है तो फिर शरीर मेरा कहाँ रहा?

जब मेरा कुछ नहीं है और मेरेको कुछ नहीं चाहिये तो फिर आपका स्वरूप 'ईश्वर-अंश, अविनाशी, चेतन, अमल, सहज सुखराशि' रहा। चेतनको क्या रोटी चाहिये? चेतनको क्या पानी चाहिये? चेतनको क्या कपड़ा चाहिये? चेतनके लिये क्या मकान चाहिये? आप कह सकते हैं कि सन्त-महात्मा भी रोटी खाते हैं तो क्या वे शरीरसे अलग होकर खाते हैं? शरीरसे अलग होकर पानी पीते हैं? शरीर रोटी खाता है तो खाता रहे, अपनेको क्या हर्ज है? दुनिया खाती है तो यह भी खाता रहे! **अगर वह शरीरको अपना मानता है तो वह महात्मा नहीं है।** अगर शरीरको अपना मानता है तो दुनियामात्रको अपना मानता है। कारण कि शरीर संसारका ही अंश है; अतः शरीरसे सम्बन्ध मानते ही संसारमात्रसे सम्बन्ध जुड़ जाता है और शरीरसे सम्बन्ध टूटते ही संसारमात्रसे सम्बन्ध टूट जाता है।

श्रोता—इच्छा छोड़ना चाहते हैं, पर छूटती नहीं! छोड़ना बड़ा कठिन लगता है!

स्वामीजी—भगवान्‌का नाम लेनेसे त्यागनेकी शक्ति आती है। भीतरसे 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारो तो शक्ति जरूर आयेगी, भगवान्‌की कृपासे आयेगी। कोई काम अपनेसे न हो तो 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' पुकारो। भगवान्‌की कृपासे जरूर काम होता है। आपसे इच्छा नहीं छूटती तो भगवान्‌से कहो कि 'हे नाथ! मेरेसे इच्छा छूटती नहीं!' कम-से-कम, कम-से-कम 'मैं छोड़ना चाहता हूँ'—इतनी बात आपकी जरूर चाहिये। फिर सब काम भगवान्‌की कृपासे होगा। दुःखी होकर कहो कि मैं छोड़ना चाहता हूँ, पर मेरेसे छूटती नहीं! जितने ज्यादा दुःखी होंगे, उतनी जल्दी काम होगा। थोड़े दुःखी होंगे तो देरी लगेगी। अपनी कमजोरीका अनुभव और भगवान्‌की अपार सामर्थ्य तथा कृपापर विश्वास—ये दो बातें चाहिये।

*** *** ***

श्रोता—गीताजीको ताबीज-रूपसे गलेमें धारण कर सकते हैं क्या?

स्वामीजी—लोग पैसा कमानेके लिये गीताजीकी ताबीज बनाते हैं तो वह चीज बढ़िया नहीं होती। गीताजीको ऊपरसे धारण न करके भीतरसे कण्ठमें धारण कर लो अर्थात् कण्ठस्थ कर लो, याद कर लो। गीताको याद करनेका जो माहात्म्य है, वह ताबीजका नहीं है। अपना जीवन गीताके अनुसार बना लो। चलती-फिरती गीता बन जाओ!

*** *** ***

भगवान्‌के शरण होनेको गीताने सर्वश्रेष्ठ बताया है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि ज्ञानमार्ग, योगमार्ग

आदि कमजोर हैं। परन्तु गीतामें भक्तिकी महिमा ज्यादा आयी है। **व्यक्ति जितनी अपने मनकी बात रखता है, उतना ही वह भगवान्‌से दूर होता है। परन्तु जो अपने मनकी बात छोड़कर भगवान्‌के मनमें अपना मन मिला देता है, उसकी जल्दी उन्नति होती है।** हरेक साधनकी एक चाबी होती है। अपनी मरजीको भगवान्‌की मरजीमें मिला दे। यह बहुत बढ़िया, बहुत ऊँचा साधन है! जितनी अपनी मरजी लगाओगे, उतनी देरी होगी। अतः भगवान्‌के शरण हो जायँ। जितना भगवान्‌पर निर्भर होते हैं, उतना जल्दी काम होता है; क्योंकि वहाँ भगवान्‌की शक्ति काम करती है। अपनी मरजी लगानेसे अपनी शक्ति काम करती है। हमारी शक्ति और भगवान्‌की शक्तिमें आकाश-पातालका फर्क है! भगवान्‌की शक्ति अपार है, असीम है, अनन्त है! इसलिये अपनी कोई शक्ति, धारणा, माँग, चाहना न रखे। अपनेको ही न रखे, प्रत्युत भगवान्‌में मिला दे।

जितना-जितना अपना अभिमान रहता है, उतने-उतने हम भगवान्‌से दूर होते हैं। अपने अभिमानके सिवाय दूसरा कोई दूर रहनेका कारण नहीं है। अतः अपनेपर कोई बोझ रखे ही नहीं, भगवान्‌पर छोड़ दे कि तू जाने, तेरा काम जाने! जितना भगवान्‌पर छोड़ेंगे, उतना ही काम बढ़िया होगा; क्योंकि उसमें भगवान्‌का बल काम करेगा। भगवान्‌ने कहा है—'**मामेकं शरणं व्रज**' (गीता १८। ६६) 'एक मेरी शरणमें आ जा'। इसलिये अपने बलका, वर्णका, आश्रमका सहारा न रखे। मैं साधु हूँ, मैं ब्राह्मण हूँ, मैं पढ़ा-लिखा हूँ, मैं पण्डित हूँ—यह भार भी न रखे। सारा बोझ भगवान्‌पर डालकर आप हल्का हो जाय! पाण्डवोंने भगवान्‌का सहारा लिया तो पाँचों भाइयोंमें एक भी नहीं मरा और अपनेपर भार लेनेवाले सौ कौरवोंमें एक भी नहीं रहा, सब-के-सब मर गये!

*** *** ***

श्रोता—शरणागति और आत्मसमर्पण एक ही हैं क्या?

स्वामीजी—एक ही हैं। आत्मसमर्पणसे शरणागति पूरी हो जाती है। मैं-पन भगवान्‌में ही मिला देना आत्मसमर्पण है। मैं-पन अलग रहे ही नहीं। सर्वथा भगवान्‌के शरण हो जाय। वास्तवमें भगवान्‌का अंश होनेसे हम सदासे ही भगवान्‌के हैं, केवल भूल गये!

सज्जनो! भगवान्‌के शरण हो जाओ। भगवान्‌की कृपासे सब काम ठीक हो जायगा! सब चिन्ता, शोक, हलचल, सन्ताप, जलन, दुःख मिट जायगा! भगवान्‌से दूर होनेसे ही दुःख हुआ है। जैसे कोई भूला हुआ आदमी शामतक घर पहुँच गया, और अभीतक रोटी नहीं बनी है, भोजन भी नहीं किया है; परन्तु एक सन्तोष होता है कि घरपर पहुँच गये! अब धीरे-धीरे रोटी भी बन जायगी, भोजन भी कर लेंगे, आराम भी करेंगे! इसी तरहसे भगवान्‌के शरण होते ही मनकी हलचल मिट जाती है कि अब अपने असली घरपर आ गये! यह संसार मुसाफिरी है, घर नहीं है। मुसाफिरीमें बढ़िया-से-बढ़िया चीज मिले तो भी है मुसाफिरी ही! यक्षने युधिष्ठिरसे प्रश्न किया कि सुखी कौन है? तो युधिष्ठिरने उत्तर दिया—

पञ्चमेऽहनि षष्ठे वा शाकं पचति स्वे गृहे।
अनृणी चाप्रवासी च स वारिचर मोदते॥

(महाभारत, वन० ३१३। ११५)

'जलचर यक्ष! जिस पुरुषपर किसीका ऋण नहीं है और जो परदेशमें नहीं है, वह भले ही पाँचवें या छठे दिन अपने घरके भीतर साग-पात ही पकाकर खाता हो, तो भी वह सुखी है।'

एक भगवान्‌का आश्रय ही पक्का है, शेष सब आश्रय कच्चे हैं। माँ, बाप, पति, पुत्र, मित्र आदि

कोई सदा साथ नहीं रहता। परन्तु भगवान् कभी साथ छोड़ते ही नहीं! नरकोंमें चले जायँ तो भी वे साथ छोड़ते नहीं! केवल आप अपनी तरफसे तैयारी कर लो, फिर सब काम भगवान् करेंगे! मनसे तैयारी कर लो कि 'हे नाथ! मैं आपका हूँ'। दूसरा सहारा मत रखो। शरण लेना, स्वीकार करना, सब पापोंसे मुक्त करना, सब दुःखोंसे छुटकारा देना भगवान्‌का काम है। आप केवल दूसरा आश्रय छोड़कर तैयार हो जाओ। अपनी तरफसे तैयारी, नीयत, विचार कर लो कि 'हे नाथ! मैं आपका हूँ'। फिर सब काम भगवान् कर देंगे।

*** *** ***

व्याकुल होकर भगवान्‌को 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' पुकारो। यह बहुत बढ़िया साधन है। इससे सब कमजोरियाँ मिट जायँगी, सब पाप-ताप मिट जायँगे! असली व्याकुलता होगी तो भगवान् पिघल जायँगे! वे सर्वसमर्थ हैं। उनकी कृपासे सब काम ठीक हो जायगा।

श्रोता—आपने कहा कि दुःखी व्यक्तिको देखकर करुणित होना चाहिये, लेकिन जब उसकी सेवा करते हैं, तब अपनेको सेवाके योग्य नहीं पाते हैं। हमारे मनमें उसके हितका भाव तो है, लेकिन फिर भी मनकी हलचल नहीं मिटती है!

स्वामीजी—सेवा करना दूर रहा, उसको पता ही न लगे! आप उसके लिये एकान्तमें रोओ, करुणित हो जाओ। उस दुःखी आदमीको भी पता न लगे कि यह मेरे लिये दुःखी है। उसके लिये रोओ, दुःखी हो जाओ—यह कर्मयोगका बहुत बढ़िया साधन है। इससे आपकी जरूर उन्नति होगी।

*** *** ***

कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग आदि साधन करना तो बादमें है, सबसे पहले तो उद्देश्य बनाना है कि हमें संसारमें, जन्म-मरणमें जाना है या अपना कल्याण करना है। इसमें एक विनक्षण बात है कि **परमात्मामें लगे हुएके द्वारा संसारका अहित नहीं होता और संसारमें लगे हुएको परमात्माकी प्राप्ति नहीं होती।** जो परमात्मप्राप्तिमें लग जाता है, उसके द्वारा संसारकी सेवा होती है, संसारका हित होता है, संसारको लाभ होता है, और अपना कल्याण तो होता ही है। दोनोंको लाभ होता है। परन्तु संसारमें लगनेसे अपनेको भी लाभ नहीं होता और संसारको भी लाभ नहीं होता। परमात्मामें ही लगे हुए गोस्वामीजी महाराज-जैसे सन्तोंके द्वारा दुनियाका बड़ा भारी हित होता है। परन्तु संसारमें लगे हुए मनुष्यके द्वारा अपना और दुनियाका भी लाभ नहीं होता, प्रत्युत केवल नुकसान-ही-नुकसान होता है! कारण यह है कि मनुष्यशरीर केवल परमात्माकी प्राप्तिके लिये ही मिला है। मनुष्यशरीर सुख भोगनेके लिये नहीं है—***'एहि तन कर फल बिषय न भाई'*** (मानस, उत्तर० ४४। १)।

*** *** ***

श्रोता—रामजीके एक ही रूपका ध्यान करें या वनवासी आदि रूपोंका भी ध्यान करें?

स्वामीजी—एक ही रूपका ध्यान करो। भगवान्‌की लीलाएँ अनेक तरहकी हैं, पर ध्यान एक ही होना चाहिये। तभी ध्यान जमेगा। ध्यानको बदलो मत।

श्रोता—कभी-कभी अचिन्तनकी स्थिति होती है।

स्वामीजी—उसमें भगवान्‌की मरजी मानो। कुछ भी चिन्तन मत करो। चिन्तन करनेवाला भी भगवान्‌के चरणोंमें लीन हो जाय। चिन्तन करनेवाला भी नहीं रहे! केवल भगवान् ही रह जायँ, मैं रहे ही नहीं!

श्रोता—भगवान्‌के दर्शनके लिये यदि खाना-पीना छोड़कर हठपूर्वक बैठ जायँ तो क्या भगवान् हमारे पास नहीं आयेंगे?

स्वामीजी—हठ नहीं करना चाहिये। इसलिये मैं 'बजरंगबाण' के पाठको भी बढ़िया नहीं मानता। इष्टको दबाना नहीं चाहिये। अपने इष्टदेवसे प्रार्थना करना तो ठीक है, पर उनपर दबाव डालना, उनको शपथ या दुहाई देकर कार्य करनेके लिये विवश करना, उनसे हठ करना ठीक नहीं है। 'बजरंगबाण' में हनुमान्‌जीपर ऐसा ही अनुचित दबाव डाला गया है; जैसे—***'इन्हें मारु तोहि सपथ राम की', 'सत्य होहु हरि सपथ पाइ कै', 'जनकसुता हरिदास कहावौ। ता की सपथ विलंब न लावौ॥', 'उठ उठ चलु तोहि राम दोहाई'***। इस तरह दबाव डालनेसे इष्टदेव राजी नहीं होते, उल्टे नाराज होते हैं।

हम किसीको दबाकर काम करायेंगे तो वे राजी कैसे होगा? हमारा लड़का है और हम लड़कीवालेको दबायें कि इतने रुपये दो तो यह पाप है पाप! दूसरा दे न दे, उसकी मरजी। किसीको भी बाँधो मत। सबको खुला रखो। जो हमारा इष्टदेव कहलाता है, उसको भी बाँधना पाप है, अन्याय है!

*** *** ***

एक परमात्मा समान रीतिसे सब जगह परिपूर्ण है—'**वासुदेवः सर्वम्**' (गीता ७। १९)। जहाँ व्याप्य-व्यापकभाव होता है, वहाँ '**सर्वम्**' होता है। '**सर्वम्**' को छोड़कर आगे केवल वासुदेव ही रहता है, तब उसमें व्याप्य-व्यापकभाव नहीं होता। व्याप्य किसमें और व्यापक किसमें? व्याप्य कौन और व्यापक कौन? एक स्वाभाविक 'चुप' (अक्रिय-तत्त्व) रहता है। स्वाभाविक 'चुप' होना ज्ञानकी असली स्थिति है। इस स्वाभाविक 'चुप' में न करना है, न जानना है, न चिन्तन है, न समाधि है। इसमें न जाननेकी रुचि है, न करनेकी रुचि है, न चिन्तनकी रुचि है, न स्थिरताकी रुचि है। एक सच्चिदानन्दघन परमात्मतत्त्व रहता है। इसके बाद 'प्रेम' है। उस प्रेममें असली दास्य, सख्य और माधुर्यभाव है। दास्यमें दो भाव होते हैं। एकमें भगवान् बालक हो जाते हैं और एकमें हम बालक हो जाते हैं।

करना, होना और है—ये तीन हैं। पहले 'करना' होता है। करना मिटनेके बाद 'होना' होता है और उसके बाद 'है' होता है। 'करना' साधन है, 'होना' भी ऊँचा साधन है, और 'है' में सिद्धि है। 'है' स्वाभाविक परिपूर्णरूपसे, शान्तरूपसे, आनन्दरूपसे, घनरूपसे, भूमारूपसे विद्यमान है।

भूमा अचल शाश्वत अमल सम ठोस है तू सर्वदा।
यह देह है पोला घड़ा बनता बिगड़ता है सदा॥

'**यो वै भूमा तत्सुखं**' (छान्दोग्य० ७। २३। १) 'निश्चय जो भूमा (महान्, निरतिशय, बहु) है, वही सुख है।' यह ज्ञानकी अवधि है, बोधकी प्राप्ति है। इस बोधके बाद प्रेम होता है, जिसमें दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य भाव होते हैं। ये भाव साधनरूपसे पहले भी होते हैं। पहले साधनभक्ति होती है।

माधुर्यभावमें स्त्री-पुरुषकी बात आती है, पर यह बात है नहीं। **माधुर्यभाव वह होता है, जिसमें ऐश्वर्य लुप्त हो जाता है।** जब भगवान् ग्वालबालोंके साथ भोजन कर रहे थे, तब वे इतने तल्लीन हो गये कि बछड़ोंको भूल गये। फिर किसीको याद आया कि बछड़े कहाँ हैं? तो भगवान्‌ने कहा कि मैं जाता हूँ। भगवान्‌ने बछड़ोंको ढूँढ़ा तो वे मिले नहीं। तब भगवान्‌में भाव आया कि बछड़े कहाँ गये? यह भाव आते ही ऐश्वर्यशक्ति प्रकट हो गयी और माधुर्यशक्ति लुप्त हो गयी। ऐश्वर्यशक्ति आते ही वे जान गये कि यह काम ब्रह्माजीने किया है। पीछे आकर देखा तो ग्वालबाल भी नहीं मिले! उनको भी ब्रह्माजी ले गये। फिर उस ऐश्वर्यशक्तिसे भगवान् स्वयं बछड़े, ग्वालबाल आदि सब बन गये!

भगवान्‌की जितनी लीलाएँ होती हैं, सब माधुर्यशक्तिसे होती हैं। गीधराजने कह दिया कि सीताजीको

रावण ले गया, पर माधुर्यशक्तिके कारण भगवान् राम भूल गये और सीताजीको ढूँढ़ते हैं!

*** *** ***

श्रोता—आपने कहा कि 'चुप' होनेके बाद प्रेम होता है, इसे थोड़ा विस्तारसे समझाएँ।

स्वामीजी—मैं भगवान्‌के चरणोंकी शरण हूँ—यह भाव तो आरम्भमें ही हो जाता है। परन्तु जब अचिन्त्यभाव होकर अपने-आपको भगवान्‌के चरणोंके अर्पित कर देता है, तक मेरी जगह भगवान्‌के चरण ही रह जाते हैं, 'मैं' रहता ही नहीं। 'मैं' चरणोंमें लीन हो गया। जब 'मैं' ही नहीं रहा तो मेरा कर्तव्य क्या हुआ? कर्तव्य कुछ नहीं रहा। 'मैं' की जगह भगवान् आ गये। पीछे एक भगवान् ही रह गये। मैंपनका अभाव हो गया। निर्मम-निरहंकार हो गया—'**निर्ममो निरहङ्कारः**' (गीता २। ७१; १२। १३)।

पहले '**वासुदेवः सर्वम्**' होता है। फिर मैंपन मिटनेपर '**सर्वम्**' मिट जाता है, केवल '**वासुदेव**' रह जाता है। '**सर्वम्**' (सम्पूर्ण संसार) अहम्‌के आश्रित है। अहम्, व्यक्तित्व सर्वथा मिटनेपर प्रेम प्रकट हो जाता है। उसमें प्रीति और प्रियतम एक हो जाते हैं। प्रीति राधा है और प्रियतम भगवान् कृष्ण हैं। ये कहनेमें दो हैं, पर वास्तवमें दो हैं नहीं।

*** *** ***

लोगोंने समझा है कि हम संसारके आदमी हैं और भगवान्‌की प्राप्ति बड़ी दुर्लभ, कठिन है। यह बात नहीं है। भगवान्‌की प्राप्ति तो अपने घरकी बात है। हम भगवान्‌के अंश हैं—'***ईस्वर अंस जीव अबिनासी***' (मानस, उत्तर० ११७। १)। भगवान् हमारे पिता हैं। पिताकी गोदमें जानेमें क्या जोर आये? सब-के-सब भाई-बहन भगवान्‌को अपना पिता कह सकते हैं। मना करनेवाला कौन है? लोग कहते हैं कि मुक्ति बड़ी कठिन है! भगवान्‌का प्रेम बड़ा कठिन है! भगवान् हमारे पिता हैं, फिर कठिनता किस बातकी? हम मौजसे अपने पिताकी गोदमें बैठे हैं! कौन मना कर सकता है?

हम सब-के-सब परमपिता भगवान्‌की गोदमें बैठे हैं। भगवान्‌की गोद इतनी बड़ी है कि सब-के-सब बैठ जायँ, फिर भी गोद खाली है! भगवान्‌का पुष्पकविमान भी ऐसा था कि उसमें चाहे जितने आ जायँ, सब बैठ जायँ!!

अतिसय प्रीति देखि रघुराई। लीन्हे सकल बिमान चढ़ाई॥

(मानस, लंका० ११९। १)

*** *** ***

आप यह स्वीकार कर लें कि सब कुछ भगवान् ही हैं—'**वासुदेवः सर्वम्**' (गीता ७। १९)। इस बातमें इतना लाभ है कि ऐसा लाभ कोई हुआ नहीं, होगा नहीं, हो सकता नहीं! ऐसे लाभकी बातको आप क्यों छोड़ते हो? यह परम लाभकी बात है। अनेक रूपोंमें मेरे भगवान् हैं.....मेरे भगवान् हैं.....मेरे भगवान् हैं—ऐसा मानकर सब-के-सब भाई-बहन मस्त हो जाओ, नाचने लग जाओ! कितने आनन्दकी बात है! कितनी बढ़िया बात है! कितनी श्रेष्ठ बात है! एक प्यारा मित्र कई वर्षोंके बाद मिलता है तो बड़ा आनन्द आता है, फिर सब जगह साक्षात् भगवान् मिल जायँ तो कितने आनन्दकी बात है! रात-दिन इसमें मस्त हो जाओ। दुःख सब मिट जायगा। कोई दुःख पास आयेगा ही नहीं।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥

(गीता ६। २२)

'जिस लाभकी प्राप्ति होनेपर उससे अधिक कोई दूसरा लाभ उसके माननेमें भी नहीं आता और जिसमें स्थित होनेपर वह बड़े भारी दुःखसे भी विचलित नहीं किया जा सकता।'

सब भगवान् ही हैं—इससे बढ़कर लाभ क्या होगा? आपका मनुष्यजीवन सफल हो गया! मनुष्यजीवन तभी सफल है, जब हरदम भगवान्‌को देखकर हरदम प्रसन्न रहे, हरदम आनन्दमें रहे। यह कोई अपना पुरुषार्थ नहीं है। यह भगवान्‌की अलौकिक कृपा है! उनकी कृपाका कोई पारावार नहीं है। उनकी कृपाको देखकर हरदम प्रसन्न रहे। मौज हो गयी! कोई मर जाय तो मौज, कोई जन्म जाय तो मौज! अच्छा हो जाय तो मौज, बुरा हो जाय तो मौज! भगवान्‌की अलौकिक, विचित्र कृपा हो गयी! सत्संग सफल हो गया! जीवन सफल हो गया! भगवान्‌ने बहुत विशेष कृपा की है! ***'जब द्रवै दीनदयालु राघव, साधु-संगति पाइये'*** (विनय० १३६। १०)। इसमें आपका और मेरा कुछ नहीं है। केवल भगवान्‌की कृपा है!

हरदम मस्त रहो! कोई मरे तो, कोई जन्मे तो, कोई बीमारी आ जाय तो, घाटा लगे तो, नफा हो जाय तो, हर हालमें मस्त रहो कि भगवान्‌की कृपा हो गयी! हरेक परिस्थितिमें भगवान्‌की कृपा है। दुःखमें कृपा कम नहीं है। शरीरके प्रतिकूल, इन्द्रियोंके प्रतिकूल, मनके प्रतिकूल, बुद्धिके प्रतिकूल हो जाय तो उसमें भी भगवान्‌की कृपा है!

लालने ताडने मातुर्नाकारुण्यं यथार्भके।
तद्वदेव महेशस्य नियन्तुर्गुणदोषयोः॥

'जिस प्रकार माताकी बालकपर उसके पालन करने और ताड़ना देनेमें कहीं अकृपा नहीं होती, उसी प्रकार गुण-दोषोंपर नियन्त्रण करनेवाले परमेश्वरकी कहीं किसीपर अकृपा नहीं होती।'

दुःखमें भगवान्‌की कृपा ज्यादा है। अगर किसी माँके मनमें आ जाय तो वह सब बालकोंको लड्डू-जलेबी दे सकती है, पर थप्पड़ नहीं मार सकती। थप्पड़ केवल अपने लड़केको ही मार सकती है। ऐसे ही दुःखमें भगवान्‌की विशेष कृपा है कि वे हमें अपना मानते हैं! अपनेपनमें जो सुख है, वह लड्डू-जलेबीमें नहीं है। इसलिये मेरा सब भाई-बहनोंसे कहना है कि हरदम मस्त रहो, आनन्दमें रहो। कोई चिन्ता, फिक्र मत करो।

—:×:—

[निम्नलिखित विषय पैम्फ्लैटके रूपमें गीताभवन, स्वर्गाश्रम, ऋषिकेशमें सत्संग-कार्यक्रममें आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा, २०५८ (दि० ५.७.२००१) के दिन वितरित किया गया था। इसके प्रति परमश्रद्धेय श्रीस्वामीजी महाराजने दिनांक १७.७.२००१, प्रातः ८.३० को अपने प्रवचनमें कहा था—*'इस पत्रेमें लिखी हुई बातें बहुत मूल्यवान् हैं! यह पत्रा इतना मुख्य है कि हजारों ग्रन्थोंमें जो चीज नहीं मिलेगी, वह इसमें मिलेगी!'*]

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

परमात्मप्राप्तिके तीन मुख्य मार्ग

परमात्मप्राप्ति तत्काल होनेवाली वस्तु है। इसमें न तो भविष्यकी अपेक्षा है और न क्रिया एवं पदार्थकी ही अपेक्षा है। परमात्मप्राप्तिके तीन मुख्य मार्ग हैं—ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग। भगवान् कहते हैं—

योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयोविधित्सया।
ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित्॥

(श्रीमद्भागवत ११। २०। ६)

'अपना कल्याण चाहनेवाले मनुष्योंके लिये मैंने तीन योग बताये हैं—ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग। इन तीनोंके सिवाय दूसरा कोई कल्याणका मार्ग नहीं है।'

ज्ञानयोग (विवेकमार्ग)

अपने जाने हुए असत्‌का त्याग करना 'ज्ञानयोग' है। इसके तीन उपाय हैं—

१. अनन्त ब्रह्माण्डोंमें लेशमात्र भी कोई वस्तु मेरी नहीं है—ऐसा जानना।

२. मुझे कुछ भी नहीं चाहिये—ऐसा जानना।

३. 'मैं' कुछ नहीं है—ऐसा जानना।

कर्मयोग (योगमार्ग)

बुराईका सर्वथा त्याग करना 'कर्मयोग' है। इसके तीन उपाय हैं—

१. किसीको बुरा न समझना, किसीका बुरा न चाहना और किसीका बुरा न करना।

२. दुःखी व्यक्तियोंको देखकर करुणित और सुखी व्यक्तियोंको देखकर प्रसन्न होना।

३. अपने लिये कुछ न करना अर्थात् संसारसे मिली हुई वस्तुओंको संसारकी ही सेवामें लगा देना और बदलेमें कुछ न चाहना।

भक्तियोग (विश्वासमार्ग)

सर्वथा भगवान्‌के शरणागत हो जाना 'भक्तियोग' है। इसके दो उपाय हैं—

१. मैं केवल भगवान्‌का अंश हूँ—'**ममैवांशो जीवलोके**' (गीता १५। ७), '***ईस्वर अंस जीव अबिनासी***' (मानस, उत्तर० ११७। १)। भगवान्‌का ही अंश होनेके नाते मैं केवल भगवान्‌का ही हूँ और केवल भगवान् ही मेरे हैं। भगवान्‌के सिवाय और कोई मेरा नहीं है—ऐसा मानना।

२. क) सब कुछ भगवान्‌का ही है अर्थात् संसारमें जो कुछ भी देखने, सुनने तथा मनन करनेमें आता है, वह सब भगवान्‌का ही है—ऐसा मानना।

ख) सब कुछ भगवान् ही हैं; भगवान्‌के सिवाय कुछ भी नहीं है। 'मैं'-सहित सम्पूर्ण जगत् उन्हींका स्वरूप है—'**वासुदेवः सर्वम्**' (गीता ७। १९)—ऐसा मानना।

ग) एक भगवान्‌के सिवाय अन्य कुछ हुआ ही नहीं, कभी होगा ही नहीं, कभी होना सम्भव ही नहीं। एकमात्र भगवान् ही थे, भगवान् ही हैं और भगवान् ही रहेंगे—ऐसा मानना।

भक्तिसे प्रतिक्षण वर्धमान परमप्रेमकी प्राप्ति होती है। एक भगवान् ही प्रेमी और प्रेमास्पदका रूप धारण करके परमप्रेमकी लीला करते हैं। उस परमप्रेमकी प्राप्तिमें ही मानव-जीवनकी पूर्णता है।

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजकी वाणीपर आधारित

'गीता प्रकाशन' का शीघ्र कल्याणकारी साहित्य

१. **संजीवनी-सुधा**—'गीता साधक-संजीवनी' पर आधारित शोधपूर्ण पुस्तक।
२. **सीमाके भीतर असीम प्रकाश**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
३. **बिन्दुमें सिन्धु**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
४. **नये रास्ते, नयी दिशाएँ**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
५. **अनन्तकी ओर**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
६. **स्वातिकी बूँदें**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
७. **मैं नहीं, मेरा नहीं**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
८. **अनुभव-वाणी**—चुने हुए अनमोल वचन। अँग्रेजी-भाषान्तरसहित।
९. **सन्त-वाणी (प्रथम शतक)**—चुने हुए सौ अनमोल वचन।
१०. **सन्त-वाणी (द्वितीय शतक)**—चुने हुए सौ अनमोल वचन।
११. **सहज गीता** (अँग्रेजीमें भी)—'साधक-संजीवनी' के अनुसार गीताका सरल हिन्दीमें भावार्थ।
१२. **हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं** (गुजराती व अँग्रेजीमें भी)—इस प्रार्थनाके रहस्य तथा महत्त्वका वर्णन।
१३. **कृपामयी भगवद्गीता** (गुजराती व अँग्रेजीमें भी)—गीताकी महिमा और उसकी विलक्षणताका वर्णन।
१४. **लक्ष्य अब दूर नहीं** (गुजरातीमें भी)—परमात्मप्राप्तिके विविध सुगम साधनोंका अनूठा संकलन।
१५. **सहज समाधि भली** (गुजरातीमें भी)—'चुप साधन' का विस्तृत विवेचन।
१६. **अपने प्रभुको पहचानें**—भगवान्‌के समग्ररूपका विस्तृत विवेचन।
१७. **एक सन्तकी अमूल्य शिक्षा** (क्या करें, क्या न करें)
१८. **विलक्षण सन्त, विलक्षण वाणी**—परमश्रद्धेय श्रीस्वामीजी महाराजकी वसीयत-सहित।
१९. **गोरक्षा—हमारा परम कर्तव्य**
२०. **रहस्यमयी वार्ता**—हस्तलिखित डायरीसे। विविध विषयोंसे सम्बन्धित मार्मिक प्रश्नोत्तर।
२१. **मेरे नाथ! मेरे प्रभो!**—भगवान्‌से अपनापन-सम्बन्धी बातोंका अनूठा संकलन।
२२. **जीवन्मुक्तिके रहस्य**—हस्तलिखित डायरीसे। जीवन्मुक्तिके सहज उपाय।
२३. **यह कलियुग है!**—कलियुगसे बचावके लिये चेतावनी।
२४. **क्या करें, क्या न करें ?**—आचार-व्यवहार संबंधी शास्त्र-वचनोंका अनूठा संग्रह।
२५. **भवन-भास्कर** (परिशिष्ट-सहित)—वास्तुशास्त्रकी महत्त्वपूर्ण बातें।
२६. **सुखपूर्वक जीनेकी कला**—सर्वोपयोगी प्रश्नोत्तर।
२७. **क्या आप ईश्वरको मानते हैं ?**—साधकोंके लिये चेतावनी।
२८. **बोलनेवाली श्रीमद्भगवद्गीता** (अर्थसहित, अँग्रेजीमें भी))—इसे पढ़नेके साथ-साथ शुद्ध उच्चारणमें सुन भी सकते हैं।
२९. **ग्लोब गीता**—आकर्षक ग्लोबके आकारमें सम्पूर्ण गीता।

गीता प्रकाशन,
कार्यालय—माया बाजार, पश्चिम फाटक,
गोरखपुर—273001 (उ०प्र०)
फोन—09389593845; 07668312429
e-mail: radhagovind10@gmail.com
website: www.gitaprakashan.com